शैक्षिक मंथन

(द्विभाषी मासिक)

शैक्षिक क्षेत्र की प्रतिनिधि पत्रिका

वर्ष : 15 अंक : 12 1 जुलाई 2023

प्र. श्रावण मास, विक्रम संवत् 2080

परामर्श

के.नरहरि

डॉ. विमल प्रसाद अग्रवाल

जगदीश प्रसाद सिंघल

शिवानन्द सिन्दनकेरा

जी. लक्ष्मण

महेन्द्र कुमार

❖

सम्पादक

प्रो. शिवशरण कौशिक

❖

संपादक मंडल

प्रो. नन्द किशोर पाण्डेय

प्रो. ओमप्रकाश पारीक

डॉ. एस.पी. सिंह

प्रो. दीनदयाल गुप्ता

भरत शर्मा

❖

प्रबन्ध सम्पादक

महेन्द्र कपूर

❖

व्यवस्थापक

बसंत जिंदल

❖

प्रेषण प्रभारी : **नौरंग सहाय 'भारतीय'**

प्रकाशकीय कार्यालय
82, पटेल कॉलोनी, सरदार पटेल मार्ग,
जयपुर (राजस्थान) 302001
दूरभाष : 9414040403

दिल्ली ब्यूरो :
शैक्षिक महासंघ सदन, 606/13,
कृष्णा गली नं.9, मौजपुर, दिल्ली - 110053

E-mail :
shaikshikmanthan@gmail.com
Visit us at :
www.shaikshikmanthan.com

वार्षिक शुल्क ₹ 250/-
दस वर्षीय शुल्क ₹ 2000/-

पृष्ठ संयोजन : सागर कम्प्यूटर, जयपुर

शैक्षिक मंथन मासिक में प्रकाशित सामग्री से संपादक मण्डल का सहमत होना आवश्यक नहीं है तथा चित्रों का प्रतीकात्मक प्रयोग किया गया है।

भारत के मन्दिरों का पौराणिक स्वरूप और स्थापत्य ❑ डॉ. धनंजय कुमार मिश्र

भारतभूमि पर चार धाम, द्वादश ज्योतिर्लिंग, इक्यावन शक्तिपीठ आदि की बारम्बार चर्चा होती है। ये सभी स्थल तीर्थस्थल हैं। सम्पूर्ण भारतवर्ष को एकता के सूत्र में आबद्ध करने में इनकी महती भूमिका है। वैष्णव, शैव, शाक्त, बौद्ध, जैन आदि सभी मतावलम्बियों के देवालय हैं। इन देवालयों या देवमन्दिर को सामान्य बोलचाल की भाषा में मन्दिर नाम से बुलाया जाने लगा है। वैसे मन्दिर शब्द का अर्थ तो रहने का स्थान, आवास, महल या भवन होता है 'मन्दद्यते यत्र मन्दिरम्।'

4

अनुक्रम

3.	सम्पादकीय	- प्रो. शिवशरण कौशिक
7.	भारतीय मंदिरों का इतिहास, स्वरूप और वास्तुकला	- डॉ. अमित कुमार
9.	त्रिपुरोपासना का दर्शन व अध्यात्म	- डॉ. राजेश कुमार जोशी
13.	भारत के मंदिरों का स्वरूप एवं स्थापत्य	- डॉ. योगेश कुमार गुप्ता
16.	मन्दिरों के वैविध्य का प्रान्त झारखण्ड	- डॉ. प्रियंका कुमारी
18.	भारत के प्रमुख राम मन्दिर	- डॉ. कमल कौशिक
21.	भारत के मंदिरों का स्वरूप और विकास	- प्रो. आलोक कु. चक्रवाल
24.	पुरुषार्थ चतुष्टय के प्रतीक खजुराहो के मंदिर	- संजय कुमार राऊत
28.	भारतीय मंदिरों का सामाजिक शैक्षणिक महत्त्व	- डॉ. संज्ञा त्रिपाठी
30.	'भारत के मंदिरों का ध्वंस और पुनर्निर्माण'	- प्रो. प्रवीन कुमार मिश्र
33.	भारत के सांस्कृतिक विकास का आधार मन्दिर	- डॉ. राजकुमार चतुर्वेदी
36.	भारतीय मंदिरों का सामाजिक सांस्कृतिक अवदान	- डॉ. महेश ठाकर
40.	भारत के मंदिरों का ध्वंस और पुनर्निर्माण	- अमोल काटेकर
42.	भारत के मंदिरों का इतिहास और संस्कृति...	- डॉ. प्राची मोघे
44.	The Mysterious and the Ever-Burning...	- Prof. Suneel Kumar
47.	Temples and Bharat	- Dr. T.S. Girishkumar
49.	Architecture of the Temples in Gujarat	- Dr. Suresh K. Agrawal
52.	Early Childhood care and Education...	- Dr. Pawan Kumar
56.	समान नागरिक संहिता : क्या और क्यों ?	- प्रो. नारायण लाल गुप्ता
59.	राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा	- डॉ. सुमन बाला
64.	भारतीय चित्रकला के नवजागरण में भारतीय...	- डॉ. धर्मवीर वशिष्ठ

संपादकीय

प्रो. शिवशरण कौशिक
सम्पादक

आजकल हमारे देश की दो घटनाओं ने समूचे राष्ट्र को उद्वेलित किया हुआ है, पहली घटना मणिपुर में हो रहे जातीय संघर्ष की हिंसक परिणति है और दूसरी, गीता प्रेस गोरखपुर को प्रधानमंत्री की अध्यक्षता वाली समिति द्वारा गांधी शांति पुरस्कार 2021 का दिया जाना है। गीता प्रेस गोरखपुर को गांधी शांति पुरस्कार दिए जाने के विषय पर भारतीय वांग्मय के प्रकाशन की पृष्ठभूमि तलाशने की आवश्यकता है। गीता प्रेस की 100 वर्ष पूर्व हुई स्थापना के उद्देश्य और तब से अब तक उसके द्वारा किए गए गहन और महत्त्वपूर्ण प्रकाशनों, उसकी पत्रकारिता आदि पर विस्तृत दृष्टि डालने की आवश्यकता है।

श्री जयदयाल गोयन्दका द्वारा संस्थापित गीता प्रेस ने भारत के सनातन अध्यात्म, धर्म, दर्शन, भक्ति, निस्वार्थ सेवा भाव और प्राणिमात्र के कल्याण के विषयों पर केंद्रित लगभग 100 करोड़ पुस्तकों का प्रकाशन अब तक किया है। रामचरितमानस, भगवद्गीता तथा वैदिक वांग्मय के विभिन्न विषयों पर प्रकाशित, संपादित पुस्तकें, पत्रिकाएँ और समीक्षा-ग्रंथों का समूचे भारतीय समाज में सम्मानजनक स्थान है। यह केवल भावनात्मक नहीं है, अपितु तात्विक और मर्म-स्पर्शी भी है। कल्याण (हिंदी मासिक) और कल्याण-कल्पतरु (अंग्रेजी) मासिक पत्रिकाओं ने भारत और दुनिया के दूसरे देशों में जितनी लोक-सिद्धि प्राप्त की है, संभवतया दुनिया की कोई और पत्रिका या प्रकाशन उसके आसपास भी नहीं ठहरता। गीता प्रेस के करोड़ों प्रकाशन महिला शक्तीकरण और बालोपयोगी साहित्य पर केंद्रित हैं। गीता प्रेस से प्रकाशित रामचरितमानस की पाठकों के बीच तथा दुनिया के पुस्तक प्रकाशन के क्षेत्र में हमेशा प्रबल मांग रहती है और यह तब है जब गीता प्रेस इन पुस्तकों को लागत से भी कम दरों पर उपलब्ध कराता है और किसी सरकारी अनुदान को स्वीकार नहीं करता। गीता प्रेस की रीति-नीति जितनी पारदर्शी और लाभ-लोभ मुक्त है, प्रकाशन की दुनिया में यह अकल्पनीय और अदभुत है।

गीता प्रेस से लगभग डेढ़ हजार से अधिक प्रकाशन हिंदी, संस्कृत, गुजराती, मराठी, तेलुगू, बंगला, उड़िया, तमिल, कन्नड़, असमिया, गुरुमुखी, मलयालम, अंग्रेजी और अन्य भारतीय भाषाओं के साथ नेपाली में भी प्रकाशित होते हैं। गीता प्रेस ने आज तक किसी सरकार से किसी भी तरह का अनुदान प्राप्त नहीं किया है। यह उसकी स्थापना के मूल उद्देश्यों का प्रभाव भी है और उसका स्वभाव भी। जब हम वर्तमान मीडिया की पीत-पत्रकारिता का व्यवहार और चरित्र देखते हैं तो पाते हैं कि आज भी गीताप्रेस की पत्रकारिता देश में ही नहीं अपितु विश्व में एक आदर्श मानक है।

श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार ने गीता प्रेस से निकलने वाले अनेक प्रकाशनों का कई वर्षों तक यशस्वी संपादन किया। वे सचमुच एक निष्काम कर्म योगी थे। गीता प्रेस ने न केवल भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महती भूमिका निभाई, अपितु भारत के ज्ञान-विज्ञान, ललित कलाओं तथा समाज सुधार के क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किए हैं। यह सच्चाई है कि गीता प्रेस गोरखपुर का भारत की जनता के आध्यात्मिक और सांस्कृतिक संस्कार की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान है। ऐसी संस्था को सम्मानित किया जाना भारत की ज्ञान-परंपरा को सम्मान देना है। अब जिन राजनीतिक दलों, नेताओं, लेखकों और अभारतीय विचार से प्रभावित लोगों द्वारा विरोध किया जा रहा है, यह एक ओर समाज के एक बड़े वर्ग के तुष्टिकरण तथा दूसरी ओर भारत के मूल विचार का विरोध है।

यह स्वाभाविक सच्चाई है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद अनेक वर्षों सत्ता के केंद्र में रहे राजनीतिक दलों और नेताओं ने भारत की गौरवशाली परंपराओं को नीचा दिखाने का संकल्प सा ले रखा है; परंतु जनता सब देखती है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण और अति संवेदनशील घटना मणिपुर के जातीय संघर्ष की है जिसमें मैतेयी और कुकी जनजातीय समुदाय हिंसक रूप में आमने सामने हैं। यह सर्वविदित है कि मणिपुर में मैतेयी समाज लगभग 54 प्रतिशत है और यह पूर्वोत्तर का मूल आदिवासी हिंदू समाज है। इसके अतिरिक्त लगभग 44 प्रतिशत कुकी और नगा समुदाय है जो कालांतर में ईसाई धर्म को अपनाने और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से कुछ विशेषाधिकार प्रदान किए जाने के कारण वहाँ सशक्त, समर्थ और 90 प्रतिशत भूमि का स्वामी है। अभी हाल ही में गुवाहाटी उच्च न्यायालय के एक निर्णय में मैतेयी समाज को अनुसूचित जनजाति का दर्जा देकर आरक्षण दिए जाने और वहाँ के भौतिक संसाधनों में मैतेयी समाज की भागीदारी की बात कही गई है।

असल में सन् 2012 में मणिपुर अनुसूचित जनजाति मांग समिति द्वारा मैतेयी समाज को एसटी का दर्जा देने की मांग की गई थी। वर्ष 1949 में भारत संघ में राज्य के विलय से पूर्व मैतेयी समुदाय को एसटी का दर्जा प्राप्त था। मैतेयी समाज मानता है कि जनजाति के दर्जे से ही उसकी पैतृक संपत्ति, भूभाग में हिस्सेदारी, परंपरा, संस्कृति और जनजातीय आस्थाओं की रक्षा की जा सकती है। सन् 1972 में केंद्र शासित प्रदेश मणिपुर को भारत का 19वाँ राज्य बनाया गया था। एक आकलन यह भी है कि वर्ष 2021 में म्यांमार में हुए सैन्य तख्ता पलट के कारण हजारों रोहिंग्या शरणार्थी पूर्वोत्तर, विशेष रूप से मणिपुर में आये जिससे इन लोगों की कई जिलों में बाढ़ सी आ गई। मणिपुर में हिंसा की एक वजह, पहाड़ी और जंगली क्षेत्र में अफीम की खेती पर सरकार की सख्ती भी है। ऐतिहासिक क्रम से उत्पन्न इस समस्या को अब राज्य सरकार ने धीरे-धीरे ठीक करने का काम किया है, किंतु कुछ लोग अभी भी इस मुद्दे को हवा देते रहते हैं।

शैक्षिक मंथन का जुलाई विशेषांक भारत के मंदिर-संस्थानों में भारत के अध्यात्म, ज्ञान-विज्ञान, समाज, संस्कृति, धर्म, दर्शन, सामाजिक आयोजनों तथा शैक्षिक गतिविधियों पर आधारित कुछ आलेखों के साथ आपके सम्मुख है। ❑

भारत के मन्दिरों का पौराणिक स्वरूप और स्थापत्य

डॉ. धनंजय कुमार मिश्र
विभागाध्यक्ष, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, एस. पी. कॉलेज कैम्पस, सिदो कान्हू मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका (झारखण्ड)

भारतवर्ष एक धर्मप्राण देश है। इसकी भूमि पुण्यभूमि है। इसके क्रोड में विन्ध्य, सहय, नील, हिमाद्रि आदि अनेक पर्वतमालाएँ विराजमान हैं तो गंगा, गोदावरी, सिन्धु आदि सरिताएँ कल्लोल करती हैं।

सागरों, पर्वतों और नदियों के पावन तट पर भारतवर्ष में असंख्य तीर्थ स्थल हैं। प्रभु श्रीराम और गोपेश्वर श्रीकृष्ण की यह लीलाभूमि है। शिव साधना की तपस्थली है। बुद्ध की ज्ञान भूमि है। महावीर की कर्मस्थली है।

आर्ष मान्यता है कि तीर्थ स्थलों पर देवताओं का निवास होता है। स्पष्ट है जहाँ देवताओं का निवास है, वहाँ देवालय हैं। देवालय न केवल आस्था के केन्द्र हैं अपितु भारतीय इतिहास की ऐसी धरोहर हैं जिस पर हमारा देश गर्व से मस्तक उठाता रहा है। भारत में हिमालय को देवतात्मा अर्थात् देवताओं की आत्मा कहा गया है –

''अस्त्युत्तरस्यां दिशि देवतात्मा,
हिमालयो नाम नगाधिराजः।''

भारतभूमि पर चार धाम, द्वादश ज्योतिर्लिंग, इक्यावन शक्तिपीठ आदि की बारम्बार चर्चा होती है ये सभी स्थल तीर्थस्थल हैं। सम्पूर्ण भारतवर्ष को एकता के सूत्र में आबद्ध करने में इनकी महती भूमिका है। वैष्णव, शैव, शाक्त, बौद्ध, जैन आदि सभी मतावलम्बियों के देवालय हैं। इन देवालयों या देवमन्दिरों को सामान्य बोलचाल की भाषा में मन्दिर नाम से बुलाया जाने लगा है। वैसे मन्दिर शब्द का अर्थ तो रहने का स्थान, आवास, महल या भवन होता है – 'मन्दद्यते यत्र मन्दिरम्।'

सनातन धर्म का संत समाज शंकराचार्य द्वारा नियुक्त चार मठों के अधीन है। ये चार मठ भारतवर्ष की चारों दिशाओं में अवस्थित हैं। यहाँ आज भी गुरु-शिष्य परम्परा का निर्वाह होता है। चार मठों के संतों को छोड़कर अन्य किसी को गुरु बनाना संत धारा के अंतर्गत नहीं आता। ये चार मठ भारतीय मन्दिरों में अग्रगण्य हैं। ये मठ हैं वेदान्त ज्ञानमठ, गोवर्धन मठ, शारदा मठ और ज्योतिर्मठ। वेदान्त ज्ञानमठ भारत के दक्षिण में तमिलनाडु के रामेश्वरम में स्थित है। इस मठ का महावाक्य है 'अहं ब्रह्मास्मि'। इस मठ का सम्बन्ध 'यजुर्वेद' से है। गोवर्धन मठ भारत के पूर्वी भाग में उड़ीसा राज्य के जगन्नाथ पुरी में स्थित है। इस मठ का महावाक्य है – 'प्रज्ञानं ब्रह्म'। इस मठ का सम्बन्ध 'ऋग्वेद' से है। भारतवर्ष के पश्चिम में शारदा (कालिका) मठ गुजरात राज्य के 'द्वारका' में स्थित है । इस मठ का महावाक्य है – 'तत्त्वमसि'।

इस मठ का सम्बन्ध सामवेद' से है। भारतवर्ष के उत्तर दिशा में पर्वतराज हिमालय की गोद में अवस्थित उत्तराखण्ड राज्य के 'बदरीनाथ' में स्थित है ज्योतिर्मठ। इस मठ का महावाक्य है – 'अयमात्मा ब्रह्म'।

इस मठ का सम्बन्ध अथर्ववेद से है। निश्चय ही उपर्युक्त चारों मठ भारतीय ज्ञानपरम्परा के आदि स्रोत वेद से सम्बन्धित हैं जो दिव्यता, भव्यता और पवित्रता के उच्च मानदण्ड पर आज भी खरा उतरते हैं।

उपर्युक्त चारों मन्दिरों के अनुरूप ही भारतभूमि पर 'द्वादश ज्योतिर्लिंग' दिव्य मन्दिरों के रूप में प्रतिष्ठित हैं। पौराणिक साहित्य के अनुसार ये शिव साधना के

श्रीशैल मल्लिकार्जुन

भारतभूमि पर चार धाम, द्वादश ज्योतिर्लिंग, इक्यावन शक्तिपीठ आदि की बारम्बार चर्चा होती है। ये सभी स्थल तीर्थस्थल हैं। सम्पूर्ण भारतवर्ष को एकता के सूत्र में आबद्ध करने में इनकी महती भूमिका है। वैष्णव, शैव, शाक्त, बौद्ध, जैन आदि सभी मतावलम्बियों के देवालय हैं। इन देवालयों या देवमन्दिर को सामान्य बोलचाल की भाषा में मन्दिर नाम से बुलाया जाने लगा है। वैसे मन्दिर शब्द का अर्थ तो रहने का स्थान, आवास, महल या भवन होता है 'मन्द्यते यत्र मन्दिरम्।'

उदात्त स्थल हैं। इनके बारे में कहा गया है – अर्थात्

सौराष्ट्र में सोमनाथ,
हिमालय के शिखर पर केदार,
सौराष्ट्रे सोमनाथं च श्रीशैले मल्लिकार्जुनम्।
उज्जयिन्यां महाकालमोंकारे परमेश्वरम्।।
केदारं हिमवत्पृष्ठे डाकिन्यां भीमशंकरम्।
वाराणस्यां च विश्वेशं त्र्यम्बकं गौतमीतटे।।
वैद्यनाथं चिताभूमौ नागेशं दारुकावने।
सेतुबन्धे तु रामेशं घुश्मेशं तु शिवालये।।

श्रीशैल पर मल्लिकार्जुन, उज्जयिनी में महाकाल, ओंकार में परमेश्वर, डाकिनी में भीमाशंकर, वाराणसी में विश्वनाथ, गोदावरी के तट पर त्र्यंबक, चिताभूमि देवघर में वैद्यनाथ, दारूकावन में नागेश, सेतुबन्ध में रामेश्वर और शिवालय में घुश्मेश्वर ज्योतिर्लिङ्ग शिव के द्वादश अवतार स्वरूप हैं।

आदिज्योतिर्लिंग 'श्रीसोमनाथ' का मंदिर गुजरात प्रान्त में है। द्वितीय ज्योतिर्लिंग 'श्रीमल्लिकार्जुन' तमिलनाडु में है। इसे दक्षिण का कैलास भी कहते हैं। तृतीय ज्योतिर्लिंग 'श्रीमहाकाल' मध्यप्रदेश के उज्जैन में है। चतुर्थ ज्योतिर्लिंग श्री ओंकारेश्वर' और 'श्रीअमलेश्वर' नाम के दो पृथक्-पृथक् लिंग हैं लेकिन इन दोनों को एक ही ज्योतिर्लिंग का दो स्वरूप माना गया है। यह भी मध्यप्रदेश में है।

पंचम ज्योतिर्लिंग 'श्रीकेदारनाथ' उत्तराखण्ड में अवस्थित है। षष्ठ ज्योतिर्लिंग 'श्रीभीमशंकर' महाराष्ट्र में है। सप्तम ज्योतिर्लिंग 'श्रीविश्वनाथ+ उत्तरप्रदेश के वाराणसी में अवस्थित है। अष्टम ज्योतिर्लिंग 'श्रीत्र्यंबकेश्वर' गोदावरी तट पर महाराष्ट्र में है। नवम ज्योतिर्लिंग जगत् प्रसिद्ध बाबा 'श्रीवैद्यनाथ' झारखण्ड के देवघर में स्थित हैं। दशम ज्योतिर्लिंग 'श्रीनागेश' बड़ौदा के पास गुजरात प्रान्त में अवस्थित हैं। एकादश ज्योतिर्लिंग सेतुबन्ध 'श्रीरामेश्वरम्' तमिलनाडु प्रान्त में तथा बारहवाँ ज्योतिर्लिंग 'श्रीघुश्मेश्वर' या 'श्रीघृष्णेश्वर' आन्ध्रप्रदेश के शिवालय नामक स्थान पर अवस्थित हैं। निश्चय ही ये मन्दिर राष्ट्रीय एकता के वाहक हैं। जो सदियों से हमारी आस्था और विश्वास के प्रतीक बने हुए हैं।

इसी प्रकार 51 शक्तिपीठों का भी सम्बन्ध सम्पूर्ण भारतवर्ष के विभिन्न राज्यों से है। ये सभी शक्तिपीठ मन्दिरों के रूप में प्रसिद्ध हैं। देवी भागवत में 108 जबकि देवी गीता में 72 शक्तिपीठों तक का उल्लेख मिलता है। यथा – हिंगलाज, शर्कररे, सुगन्धा-सुनन्दा, महामाया, ज्वालामुखी सिद्धिदा, वैद्यनाथ जयदुर्गा, गुजरेश्वरी, दाक्षायणी, विरजा, गंडकी, बहुला, मांगल्यचंडिका, त्रिपुरसुन्दरी आदि। कुछ शक्तिपीठ विभाजन की विभीषिका के कारण पाकिस्तान और बांग्लादेश के क्षेत्र में सम्प्रति अवस्थित हैं।

भारतवर्ष के मन्दिरों का इतिहास अत्यन्त प्राचीन है। सच तो यह है कि ज्ञान, अध्यात्म, विश्वास और धर्म का प्रतीक होने के कारण मन्दिरों का इतिहास उतना ही पुराना है जितना भारत का। बारम्बार आक्रान्ताओं के आक्रमण के बाद भी दैवी आशीर्वाद व राजधर्म निर्वहण ने मन्दिरों के अस्तित्व को आज तक अक्षुण्ण रखा है। फिर भी सोमनाथ, अयोध्या, मथुरा, काशी आदि के मंदिर सदियों तक आक्रमणकारियों की कुत्सित चेष्टा से मुक्ति के लिए प्रयासरत हैं। सोमनाथ के मन्दिर का पुनर्निमाण स्वतन्त्रता के बाद सम्भव हो सका है जबकि अयोध्या में भव्य मन्दिर का निर्माण उच्चतम न्यायालय के आदेश पर हो रहा है।

मन्दिरों का सम्बन्ध भारतीय वास्तुकला से अद्भुत रूप से जुड़ा है। भारत वर्ष के विभिन्न भागों में अवस्थित मन्दिर सदैव अपनी वास्तुकला का अनुपम निदर्शन करते हैं। संक्षेप में वास्तुकला की दृष्टि से कुछ विचार समीचीन है। यद्यपि मन्दिर निर्माण की प्रक्रिया का आरम्भ आधुनिक विद्वान् मौर्य काल से मानते हैं और अपनी निर्माण की शैली के कारण स्वर्णिम काल गुप्त काल को माना जाता है। संरचनात्मक मंदिरों के अतिरिक्त भारत में एक अन्य प्रकार के विशेष मंदिरों की भी चर्चा मिलती है, जो चट्टानों को काटकर बनाए गए थे। इनमें प्रमुख है महाबलीपुरम् का 'रथ-मंडप'। इतिहासकार इसे पाँचवीं शताब्दी का मानते हैं।

स्थापत्य की दृष्टि से गुप्तकालीन मंदिर आकार में अत्यधिक छोटे हैं। इनमें एक वर्गाकार ईंट का चबूतरा होता है। प्रवेश के लिये सोपान होता है। मन्दिर के मध्य में चतुर्भुज कक्ष होता है। इसे गर्भगृह कहते हैं। कक्ष का छत समतल होता है। कोई प्रदक्षिणा पथ नहीं होता है। भारत के प्राचीनतम संरचनात्मक मंदिर के उदाहरण के रूप में ललितपुर, उ.प्र. स्थित 'देवगढ़ का दशावतार मंदिर' कानपुर, उ. प्र. स्थित 'भीतरगाँव का मंदिर' जबलपुर, मध्यप्रदेश स्थित 'तिगवा का विष्णु मंदिर' सतना, मध्यप्रदेश स्थित 'भूमरा का शिव मंदिर', पन्ना, म.प्र. स्थित 'नचना कुठार का पार्वती मंदिर' आदि का नाम लिया जा

सकता है। प्राचीन ग्रंथों में मन्दिर स्थापत्य सम्बन्धित कुछ नाम मिलते हैं। यथा पंचायतन, भूमि, विमान भद्ररथ, कर्णरथ, प्रतिरथ आदि।

छठी शताब्दी ईस्वी तक उत्तर और दक्षिण भारत में मंदिर वास्तुकला शैली लगभग एकसमान थी, लेकिन छठी शताब्दी ई. के बाद प्रत्येक क्षेत्र का भिन्न-भिन्न दिशाओं में विकास हुआ। बाद में मंदिरों के निर्माण में तीन प्रकार की शैलियों - नागर, द्रविड़ और बेसर शैली का प्रयोग किया गया।

'नागर' शब्द नगर से बना है। सर्वप्रथम नगर में निर्माण होने के कारण इसे नागर शैली कहा जाता है। यह संरचनात्मक मंदिर स्थापत्य की एक शैली है जो हिमालय से लेकर विंध्य पर्वत तक के क्षेत्रों में प्रचलित थी। इसे 8वीं से 13वीं शताब्दी के बीच उत्तर भारत में मौजूद शासक वंशों ने पर्याप्त संरक्षण दिया। नागर शैली की पहचान-विशेषताओं में समतल छत से उठती हुई शिखर की प्रधानता पाई जाती है। इसे अनुप्रस्थिका एवं उत्थापन समन्वय भी कहा जाता है। नागर शैली के मंदिर आधार से शिखर तक चतुष्कोणीय होते हैं। ये मंदिर उँचाई में आठ भागों में बाँटे गए हैं, जिनके नाम इस प्रकार हैं- मूल (आधार), गर्भगृह मसरक (नींव और दीवारों के बीच का भाग), जंघा (दीवार), कपोत (कार्निस), शिखर, गल (गर्दन), वर्तुलाकार आमलक और कुंभ (शूल सहित कलश)। इस शैली में बने मंदिरों को ओडिशा में 'कलिंग', गुजरात में 'लाट' और हिमालयी क्षेत्र में 'पर्वतीय' कहा गया।

कृष्णा नदी से लेकर कन्याकुमारी तक द्रविड़ शैली के मंदिर पाए जाते हैं। द्रविड़ शैली की शुरुआत 8वीं शताब्दी में हुई और सुदूर दक्षिण भारत में इसकी दीर्घजीविता 18वीं शताब्दी तक बनी रही। द्रविड़ शैली की पहचान विशेषताओं में- प्राकार (चहारदीवारी), गोपुरम (प्रवेश द्वार), वर्गाकार या अष्टकोणीय गर्भगृह (रथ), पिरामिडनुमा शिखर, मंडप (नंदी मंडप) विशाल संकेन्द्रित प्रांगण तथा अष्टकोण मंदिर संरचना शामिल हैं। द्रविड़ शैली के मंदिर बहुमंजिला होते हैं । पल्लवों ने द्रविड़ शैली को जन्म दिया, चोल काल में इसने उँचाइयाँ हासिल की तथा विजयनगर काल के बाद से यह ह्रासमान हुई। चोल काल में द्रविड़ शैली की वास्तुकला में मूर्तिकला और चित्रकला का संगम हो गया। यूनेस्को की विश्व विरासत सूची में शामिल तंजौर का वृहदेश्वर मंदिर (चोल शासक राजराज - द्वारा निर्मित) 1000 वर्षों से द्रविड़ शैली का जीता-जागता उदाहरण है। द्रविड़ शैली के अंतर्गत ही आगे नायक शैली का विकास हुआ, जिसके उदाहरण हैं- मीनाक्षी मंदिर (मदुरै), रंगनाथ मंदिर (श्रीरंगम, तमिलनाडु), रामेश्वरम् मंदिर आदि।

श्रीसोमनाथ

नागर और द्रविड़ शैलियों के मिले-जुले रूप को बेसर शैली कहते हैं। इस शैली के मंदिर विंध्याचल पर्वत से लेकर कृष्णा नदी तक पाए जाते हैं। बेसर शैली को चालुक्य शैली भी कहते हैं। बेसर शैली के मंदिरों का आकार आधार से शिखर तक गोलाकार (वृत्ताकार) या अर्ध गोलाकार होता है। बेसर शैली का उदाहरण है - वृंदावन का वैष्णव मंदिर जिसमें गोपुरम बनाया गया है। गुप्त काल के बाद देश में स्थापत्य को लेकर क्षेत्रीय शैलियों के विकास में एक नया मोड़ आता है। इस काल में ओडिशा, गुजरात, राजस्थान एवं बुंदेलखंड का स्थापत्य ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। इन स्थानों में 8वीं से 13वीं सदी तक महत्त्वपूर्ण मंदिरों का निर्माण हुआ। इसी दौर में दक्षिण भारत में चालुक्य, पल्लव, राष्ट्रकूटकालीन और चोलयुगीन स्थापत्य अपने वैशिष्ट्य के साथ सामने आया।

बौद्ध और जैन मन्दिरों की भी अपनी विशेष शैली है। चैत्य और विहार बौद्ध वास्तुकला के उदाहरण कहे जा सकते हैं। स्तूप, पैगोडा, मठ आदि इन्हीं से सम्बन्धित हैं। जैन मन्दिर रॉक-कट वास्तुकला से युक्त हैं। महाराष्ट्र में एलोरा की गुफाएँ, राजस्थान के माउन्ट आबू स्थित दिलवाड़ा जैन मन्दिर आदि।

अन्ततः कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में मन्दिरों का स्वरूप और स्थापत्य सम्पूर्ण संसार में अद्भुत है। हमें अपने मन्दिरों पर गर्व होना चाहिए। ❑

भारतीय मंदिर वास्तुकला एक विशाल और जटिल विषय है, जो देश के विविध धार्मिक और सांस्कृतिक ताने-बाने को दर्शाता है। साथ ही, मंदिरों की विशिष्ट संरचना और व्यवस्था भारत में विभिन्न क्षेत्रों, स्थापत्य शैली और समय अवधि में भिन्न हो सकती है। प्रत्येक मंदिर की अपनी अनूठी विशेषताएँ और तत्त्व हो सकते हैं जो स्थानीय रीति-रिवाजों, विश्वासों और कलात्मक परंपराओं से प्रभावित होते हैं।

भारतीय मंदिरों का इतिहास, स्वरूप और वास्तुकला

डॉ. अमित कुमार
सहायक आचार्य, पर्यटन एवं होटल प्रबंधन विभाग, हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय, महेंद्रगढ़ (हरियाणा)

भारतीय मंदिरों की उत्पत्ति प्राचीन काल में देखी जा सकती है, मंदिर वास्तुकला के विकास के साथ भारत में एक प्रमुख धार्मिक परंपरा के रूप में हिंदू धर्म के विकास से निकटता से जुड़ा हुआ है। पूजा के लिए मंदिरों और पवित्र स्थानों की अवधारणा प्रारंभिक वैदिक ग्रंथों में पाई जा सकती है, जिसमें वेदियों और बलि चबूतरों के निर्माण का उल्लेख है। भारत में सबसे पहले के मंदिर लकड़ी या नाशवान सामग्रियों से बने साधारण ढाँचे थे, जो आज तक नहीं बचे हैं। सांस्कृतिक, सामाजिक और तकनीकी प्रगति से प्रभावित इन प्रारंभिक रूपों से अधिक स्थायी पत्थर संरचनाओं में परिवर्तन कई शताब्दियों में हुआ।

गुप्त काल (चौथी से छठी शताब्दी सीई) के दौरान पत्थर के मंदिरों के निर्माण को प्रमुखता मिली और बाद के राजवंशों और राज्यों में फलता-फूलता रहा। चोल, पल्लव, चालुक्य, राष्ट्रकूट, होयसला और विजयनगर साम्राज्य कुछ प्रमुख राजवंश थे जिन्होंने भारत के विभिन्न क्षेत्रों में मंदिर वास्तुकला के विकास में योगदान दिया। क्षेत्रीय और स्थानीय शैलियों को शामिल करते हुए, समय के साथ भारतीय मंदिरों की डिजाइन और वास्तुकला विकसित हुई। शिल्प शास्त्र और वास्तु शास्त्र जैसे विभिन्न वास्तुशिल्प ग्रंथ, मंदिर निर्माण के लिए दिशा-निर्देश प्रदान करते हैं, अनुपात, माप और आध्यात्मिक प्रतीकवाद पर जोर देते हैं। भारतीय मंदिरों ने न केवल पूजा स्थलों के रूप में बल्कि सामुदायिक समारोहों, सांस्कृतिक गतिविधियों और शिक्षा के केंद्रों के रूप में भी काम किया। वे महत्त्वपूर्ण स्थलों और संरक्षण के केंद्र बन गए, कलाकारों, मूर्तिकारों और शिल्पकारों को आकर्षित किया, जिन्होंने मंदिरों में पाए जाने वाले उत्कृष्ट पत्थर की नक्काशी और जटिल मूर्तियों में योगदान दिया। जबकि भारतीय मंदिरों का प्राथमिक उद्देश्य देवताओं को घर और सम्मान देना है, वे धार्मिक परंपराओं और अनुष्ठानों को संरक्षित और बढ़ावा देने, आध्यात्मिक और सांस्कृतिक केंद्रों के रूप में भी काम करते हैं। मंदिर भारत के धार्मिक और सामाजिक ताने-बाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे हैं, जो जीवन के सभी क्षेत्रों से भक्तों और आगंतुकों को आकर्षित करते हैं।

भारतीय मंदिर देश की समृद्ध सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं को दर्शाते हुए विविध प्रकार के रूपों और स्थापत्य शैली का प्रदर्शन करते हैं। भारतीय मंदिरों की वास्तुकला हजारों वर्षों में विकसित हुई है और विभिन्न क्षेत्रों और अवधियों में भिन्न होती है। भारतीय मंदिर वास्तुकला में पाई जाने वाली कुछ सामान्य विशेषताएँ और रूप इस प्रकार हैं -

1. **नगर शैली** - यह शैली उत्तर भारत में प्रचलित है और इसकी विशेषता एक लंबा, घुमावदार टॉवर है जिसे शिखर कहा जाता है। शिखर क्षैतिज स्तरों की एक शृंखला में ऊपर उठता है, धीरे-धीरे ऊपर की ओर आकार में घटता जाता है। मुख्य

गर्भगृह, या गर्भगृह, देवता का घर है और आमतौर पर आकार में वर्गाकार या आयताकार होता है।

2. द्रविड़ शैली - यह शैली दक्षिण भारत में प्रमुख है और जटिल नक्काशीदार मीनारों की विशेषता है जिन्हें गोपुरम कहा जाता है। गोपुरम अक्सर अत्यधिक सजाए जाते हैं और विभिन्न पौराणिक कहानियों को दर्शाती विस्तृत मूर्तियाँ पेश करते हैं। गर्भगृह आमतौर पर संकेंद्रित परिक्षेत्रों की एक श्रृंखला से घिरा होता है जिसे प्राकारम कहा जाता है।

3. वेसर शैली - यह शैली नागर और द्रविड़ शैली दोनों के तत्त्वों को जोड़ती है और आमतौर पर भारत के मध्य और पश्चिमी भागों में पाई जाती है। वेसर शैली वास्तुकला की विशेषताओं का एक संयोजन प्रदर्शित करती है, जैसे कि एक पिरामिड गुंबद के साथ एक शिखर या एक घुमावदार संरचना के साथ एक वर्गाकार आधार।

4. मंदिर परिसर - भारतीय मंदिर अक्सर एक बड़े परिसर का हिस्सा होते हैं जिसमें विभिन्न संरचनाएँ और तत्त्व शामिल होते हैं। इन परिसरों में विभिन्न देवताओं को समर्पित कई मंदिर शामिल हो सकते हैं, साथ ही धार्मिक अनुष्ठानों के लिए हॉल, खंभे वाले गलियारे, टैंक या सीढ़ीदार कुएँ, और अन्य सहायक भवन शामिल हो सकते हैं।

5. मूर्तिकला - भारतीय मंदिरों को उनकी जटिल और उत्कृष्ट पत्थर की नक्काशी के लिए जाना जाता है। मूर्तियाँ दीवारों, स्तंभों और मंदिरों के प्रवेश द्वारों को सुशोभित करती हैं, जिसमें देवी-देवताओं, दिव्य प्राणियों, पौराणिक दृश्यों और रोजमर्रा की जिंदगी को दर्शाया गया है। ये नक्काशियाँ धार्मिक और सांस्कृतिक कहानियों को संप्रेषित करते हुए सजावटी और कथा दोनों उद्देश्यों की पूर्ति करती हैं।

6. वास्तु शास्त्र - भारतीय मंदिर वास्तु शास्त्र द्वारा निर्देशित है, जो एक प्राचीन वास्तुशिल्प ग्रंथ है जो इमारतों के लेआउट, डिजाइन और अभिविन्यास के लिए दिशानिर्देश निर्धारित करता है। यह ब्रह्मांडीय शक्तियों के साथ सामंजस्य, अनुपात और सरेखण के सिद्धांतों पर जोर देता है।

भारतीय मंदिर आमतौर पर एक विशिष्ट संरचनात्मक लेआउट और व्यवस्था का पालन करते हैं। जबकि क्षेत्रीय और स्थापत्य शैली के आधार पर भिन्नता हो सकती है, यहाँ भारतीय मंदिरों की संरचना का सामान्य विवरण दिया गया है -

1. मुख्य प्रवेश द्वार - भारतीय मंदिरों में आमतौर पर एक मुख्य प्रवेश द्वार होता है, जिसे अक्सर सजावटी तत्त्वों और मूर्तियों से सजाया जाता है। इस प्रवेश द्वार को गोपुरम (दक्षिण भारत में) या तोरण (उत्तर भारत में) के रूप में जाना जाता है। यह मंदिर परिसर के लिए एक भव्य प्रवेश द्वार के रूप में कार्य करता है और धर्मनिरपेक्ष दुनिया से पवित्र स्थान में परिवर्तन को चिह्नित करता है।

2. मंडप - मंदिर परिसर में प्रवेश करने पर, प्राय: एक स्तंभों वाला हॉल होता है जिसे मंडप कहा जाता है। यह हॉल भक्तों के लिए एक सभा स्थल, धार्मिक अनुष्ठानों के लिए एक स्थान और कभी-कभी सांस्कृतिक गतिविधियों के लिए एक असेंबली हॉल के रूप में कार्य करता है। मंडप में जटिल नक्काशीदार खंभे और छतें हो सकती हैं।

3. प्रदक्षिणा पथ - मंडप से प्राय: एक प्रदक्षिणा पथ होता है जिसे प्रदक्षिणा पथ कहा जाता है। भक्त श्रद्धा के रूप में आंतरिक गर्भगृह या गर्भगृह के चारों ओर दक्षिणावर्त चलते हैं। प्रदक्षिणा पथ एक खुला मार्ग हो सकता है या खंभों वाले गलियारों में बंद हो सकता है।

4. गर्भगृह - गर्भगृह मंदिर का अंतरतम गर्भगृह है जहाँ मुख्य देवता या देवताओं को विराजमान किया जाता है। इसे मंदिर का सबसे पवित्र क्षेत्र माना जाता है। गर्भगृह अक्सर एक छोटा, कम रोशनी वाला कक्ष होता है और कभी-कभी ऊँचा या मंदिर के केंद्र में स्थित होता है। देवता को आसन या वेदी पर रखा जाता है।

5. शिखर या विमान - शिखर (उत्तर भारत में) या विमान (दक्षिण भारत में) विशाल अधिरचना है जो गर्भगृह से ऊपर उठती है। यह अक्सर आकार में पिरामिडनुमा या घुमावदार होता है और देवताओं के आकाशीय निवास का प्रतिनिधित्व करता है। शिखर या विमान को आमतौर पर जटिल रूप से उकेरा जाता है और इसे मूर्तिकला के तत्त्वों और सजावटी रूपांकनों से सजाया जा सकता है।

6. बाहरी दीवारें - मंदिर परिसर बाहरी दीवारों से घिरा हुआ है, जो बाहरी वातावरण से पवित्र स्थान को चित्रित करता है। दीवारों में सजावटी मूर्तियाँ, राहत नक्काशियाँ, या पौराणिक कहानियों को दर्शाने वाले वर्णनात्मक पैनल हो सकते हैं।

7. अतिरिक्त संरचनाएँ - बड़े मंदिर परिसरों में उनके परिसर के भीतर अतिरिक्त संरचनाएँ हो सकती हैं। इनमें अन्य देवताओं को समर्पित छोटे मंदिर, सामुदायिक सभाओं और समारोहों के लिए हॉल, अनुष्ठान स्नान के लिए टैंक या सीढ़ीदार कुएँ और प्रशासनिक भवन शामिल हो सकते हैं।

ये सामान्य विशेषताएँ हैं, और क्षेत्रीय और ऐतिहासिक प्रभावों के आधार पर प्रत्येक शैली में विविधताएँ मौजूद हैं। भारतीय मंदिर वास्तुकला एक विशाल और जटिल विषय है, जो देश के विविध धार्मिक और सांस्कृतिक ताने-बाने को दर्शाता है। साथ ही, मंदिरों की विशिष्ट संरचना और व्यवस्था भारत में विभिन्न क्षेत्रों, स्थापत्य शैली और समय अवधि में भिन्न हो सकती है। प्रत्येक मंदिर की अपनी अनूठी विशेषताएँ और तत्त्व हो सकते हैं जो स्थानीय रीति-रिवाजों, विश्वासों और कलात्मक परंपराओं से प्रभावित होते हैं। ❑

त्रिपुरोपासना का दर्शन व अध्यात्म

डॉ. राजेश कुमार जोशी
आचार्य एवं प्राच्यविद्या अन्वेषक
श्री गोविन्द गुरु राजकीय महाविद्यालय, बाँसवाड़ा

भारतीय संस्कृति में सर्वव्यापी चेतन सत्ता की उपासना मातृरूप में की जाती रही है। संसार में सम्पूर्ण जीवों के लिये मातृभाव की विशेष महिमा है। व्यक्ति अपनी सर्वाधिक श्रद्धा स्वभावतः माँ के चरणों में अर्पित करता है, क्योंकि माँ की गोद में ही सर्वप्रथम उसे लोकदर्शन का सौभाग्य प्राप्त होता है। माता ही सभी की आदि गुरु है। महाभारत में माँ को धरती से भी भारी बताया गया है - 'माता गुरुतरा भूमेः'। माता की दया और अनुकम्पा पर ही बालकों का ऐहिक और पारलौकिक कल्याण निर्भर करता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने दीक्षान्तोपदेश के 'मातृदेवो भव', 'पितृदेवो भव', 'आचार्यदेवो भव' आदि मन्त्रों में पहला स्थान माता को ही दिया गया है।

त्रिगुणात्मिका प्रकृति की प्रधान शक्ति ही सर्वोपरि है, जिसे सम्पूर्ण विश्व में सत्ता प्राप्त है। सनातन धर्म में महाकाली, महालक्ष्मी एवं महासरस्वती, जैनमत में पद्मावती और बौद्धमत में तारा आदि की उपासना उस आद्याशक्ति की ही उपासना है। जिस शक्ति से रहित होने पर शिव भी शव हो जाते हैं, उसी शक्ति को सनातन धर्म-संस्कृति के षण्मतों में राजराजेश्वरी भगवती पराम्बा त्रिपुरसुन्दरी कहा गया है। नामभेद से यही महाशक्ति नवदुर्गा, दश महाविद्या, श्रीविद्या, ललिताम्बा, राजराजेश्वरी, अन्नपूर्णा, जगद्धात्री, गायत्री, भुवनेश्वरी, काली आदि विविध रूपों में सम्पूज्य हैं।

भारतवर्ष के स्वातन्त्र्यवीरों ने राष्ट्रशक्ति के रूप में इन्हें 'भारतमाता' के नाम से अभिहित किया है।

भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति में ऋषि परम्परा का महनीय स्थान है। हमारे ऋषियों का परम उद्देश्य रहा है - सत्य का साक्षात्कार, पूर्णत्व की प्राप्ति और आत्म स्वरूप की उपलब्धि। किन्तु इस महायात्रा में धनादि से उत्पन्न अहंकार, रूप-सौन्दर्य, विद्या-सम्पन्नता, सम्प्रदाय-श्रेष्ठता और कुल-वरीयता का अभिमान आदि इसके भयंकर शत्रु हैं। इनके रहते अध्यात्म की ओर एक कदम भी रखना सम्भव नहीं, लक्ष्य तक पहुँचना तो दूर की बात है।

आदिशंकराचार्य द्वारा संस्थापित षण्मतों में ईश्वर छः रूपों में उपास्य है - शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य, विष्णु और निर्गुण-निराकार ब्रह्म। प्राचीनकाल से ही ये आराध्य देवी-देवता उपासक के मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास के अनुरूप निरन्तर संकल्पित होते रहे हैं। व्यक्ति के संस्कार, पूर्वजन्मों के विचार, श्रद्धा-विश्वास, विनम्रता एवं दैविक कृपा का भी उस पर प्रभाव पड़ता है। पूर्व वैदिक काल में ईश्वर के लोकप्रिय रूपों में इनका उल्लेख पुराण, इतिहास तथा आगम ग्रन्थों में उपलब्ध था। वेद, पुराण, रामायण, महाभारत एवं विविध आगमों में इनके रहस्य, चरित्र और उपासना के सम्बन्ध में विस्तृत प्रकाश डाला गया है। इनमें कहीं-कहीं श्रेष्ठता-कनिष्ठता की बात भी आती है, किन्तु उसका तात्पर्य उपासक की अपने इष्ट में निष्ठा को दृढ़ करने में ही है, तत्त्वतः तो इनका परस्पर

अभेद ही है।

आगम ग्रन्थों को तन्त्र के रूप में जाना जाता है तथा ये वैदिक विचारों का अनुकरण करते हैं। इनके अनुसार ब्रह्म और शक्ति एक ही है। पहला रूप अपने आप में पदार्थों तथा वस्तुओं के गुण-धर्म रूप में एवं द्वितीय सर्वशक्तिमान ब्रह्म के रूप में ब्रह्माण्ड में आन्तरिक एवं बाह्यरूप से अत्यन्त अपरिमित और श्रेष्ठतम रूप में अवस्थित है। ब्रह्म जैसा निखिल है वैसा ही सकल भी है और वह भी प्रकृति के साथ एवं प्रकृति के बाद (बिना) भी। निर्गुण ब्रह्म में शक्ति संभाव्य स्वरूपा है जबकि सगुण ब्रह्म में शक्ति गतिशील, ऊर्ध्वगामी तथा सृजनकारी स्वरूपा है। जब निर्गुण ब्रह्म में सृष्टि सृजन की इच्छा बलवती होती है तब-तब यह शक्ति गतिशील, क्रियाशील और सृजनधर्मी स्वरूपा होकर प्रकट होती है। यह शक्ति ब्रह्मलीला अथवा माया के बिना भी स्वत: स्फूर्त होती है।

चित्तशक्ति ही आद्य शक्ति है और इस चेतनशक्ति की क्षमता प्रकाश (उजागर) तथा विमर्श (प्रतिबिम्ब करने) की है। शक्ति की इस विमर्श क्षमता के परिणामस्वरूप ही जगत की स्वत: अभिव्यक्ति होती है। शिवशक्ति की समरसता एवं शिवसायुज्य को ही मोक्ष माना गया है किन्तु उसकी प्राप्ति के लिए शक्ति-साधना का विशेष महत्त्व है। प्रकृति की विविध विधाओं को समझने के लिए तन्त्र एक अद्‌भुत संयोग है। यह प्रकृति के सांख्य दर्शन की अवधारणा की व्याख्या करता है। यह ब्रह्म के अद्वैत वेदान्त की विषय-सामग्री है। यह तन्त्र आकाशीय तत्त्व ब्रह्म के विशिष्टाद्वैत तथ्यों एवं ब्रह्माण्ड के द्वैत सिद्धान्तों का सुन्दर समन्वय है। शिव-शक्ति स्वरूप जगत् के माता-पिता का एक महान् स्वरूप भगवत्पादाचार्य शंकर की दृष्टि में ''श्रीचक्र'' (श्रीयन्त्र) के रूप में प्रस्तुत हुआ है, जो भगवती त्रिपुरा-सुन्दरी की बाह्यपूजा का प्रतीक यन्त्र है। भगवती की आन्तरपूजा शरीर को ही श्रीयन्त्र मानकर षटचक्रों का वेधन करने से सम्बद्ध है।

योग साधना के द्वारा पिण्ड (शरीर) में कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर आत्मा का ईश्वर के साथ संयोग बनाती है और योजनाबद्ध रूप से सहस्रार में विजय आनन्द मनाती है। तन्त्र-साधना किसी धर्म विशेष का निषेध कर व्यावहारिक अनुशासन और मर्यादा का एक धर्म बनाती है। मानव शरीर जिसे पिण्ड कहा जाता है वह ब्रह्माण्ड का ही एक पूर्ण प्रतिरूप है, जिसे स्वयं ब्रह्माण्ड के रचनाकार ने अपने ही प्रतिरूप सदृश्य बनाया है। उसमें वह सब कुछ समाहित है, जो ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।

जीव शिव है तथा कुण्डलिनी उसकी पराशक्ति है तथा दोनों के मिलने की तीव्र उर्जा द्वारा निर्मित योग शिवशक्ति का एकाकार करता है और त्रिपुरा-सुन्दरी उपासना के परम एकत्व के उद्देश्य को पूरा करता है। तभी अन्वेषणकर्ता साधक जीवनमुक्त होकर ब्रह्मसदृश्य विश्वव्यापी और व्यापक बन जाता है तथा सभी उसी प्रकार शक्ति की एकमात्र उपासना करते हुए उसी का गुणगान करते हुए परमानन्द में लीन हो जाते हैं।

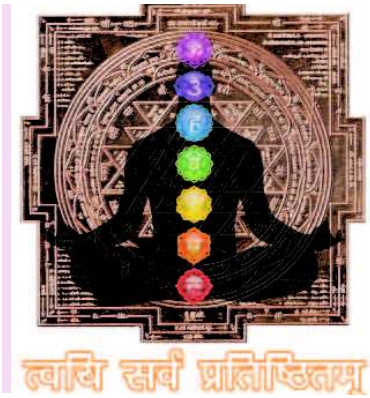

शिव-शक्ति स्वरूप जगत् के माता-पिता का एक महान् स्वरूप भगवत्पादाचार्य शंकर की दृष्टि में 'श्रीचक्र' (श्रीयन्त्र) के रूप में प्रस्तुत हुआ है, जो भगवती त्रिपुरा-सुन्दरी की बाह्यपूजा का प्रतीक यन्त्र है। भगवती की आन्तरपूजा शरीर को ही श्रीयन्त्र मानकर षटचक्रों का वेधन करने से सम्बद्ध है। योग साधना के द्वारा पिण्ड (शरीर) में कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर आत्मा का ईश्वर के साथ संयोग बनाती है और योजनाबद्ध रूप से सहस्रार में विजय आनन्द मनाती है। तन्त्र-साधना किसी धर्म विशेष का निषेध कर व्यावहारिक अनुशासन और मर्यादा का एक धर्म बनाती है। मानव शरीर जिसे पिण्ड कहा जाता है वह ब्रह्माण्ड का ही एक पूर्ण प्रतिरूप है, जिसे स्वयं ब्रह्माण्ड के रचनाकार ने अपने ही प्रतिरूप सदृश्य बनाया है। उसमें वह सब कुछ समाहित है, जो ब्रह्माण्ड में व्याप्त है।

महाशक्ति ही परब्रह्म परमात्मा हैं, जो विभिन्न रूपों में विविध लीलाएँ करती हैं। इन्हीं की शक्ति से ब्रह्मा विश्व की उत्पत्ति करते हैं, विष्णु विश्व का पालन करते हैं और शिव जगत् का संहार करते हैं। अर्थात् सृजन-पालन-संहार के रूप में संकल्पित करने वाली महाशक्ति ही आद्या नारायणी शक्ति हैं। इसीलिए भारतीय संस्कृति में सर्वव्यापी चेतन सत्ता की उपासना मातृरूप में की जाती रही है। संसार में सम्पूर्ण जीवों के लिए मातृभाव की महिमा विशेष है। व्यक्ति अपनी सर्वाधिक श्रद्धा स्वभावत: माँ के चरणों में अर्पित करता है, क्योंकि माँ की गोद में ही सर्वप्रथम उसे लोकदर्शन का सौभाग्य प्राप्त होता है। माता ही सभी की आदि गुरु है। महाभारत में माँ को धरती से भी भारी बताया गया है - 'माता गुरुतरा भूमे:'। माता की दया और अनुकम्पा पर ही बालकों का ऐहिक और पारलौकिक कल्याण निर्भर करता है। तैत्तिरीयोपनिषद् में महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपने दीक्षान्तोपदेश के 'मातृदेवो भव', 'पितृदेवो भव', 'आचार्यदेवो भव' आदि मन्त्रों में सर्वप्रथम स्थान माता को ही दिया गया है।

भगवती महाशक्ति सम्पूर्ण जगत् की समष्टिरूपिणी माता हैं और विविध शक्तियों के रूप में सर्वत्र क्रीड़ा कर रही हैं - 'शक्तिक्रीड़ा जगत्सर्वम्'। शक्तिहीन का कहीं भी समादर नहीं होता। सर्वत्र शक्ति की ही प्रधानता है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि 'समस्त विश्व महाशक्ति का विलास है।' सृष्टि का आदि कारण ''त्रिपुरा'' को माना गया है, जो ज्ञान-ज्ञेय-ज्ञातृरूप त्रिपुटीकृत संसार की पुरोवर्तिनी आदिभूता होने के कारण ''त्रिपुरा'' कही गयी हैं। त्रिपुरासुन्दरी उपासना में मूल रूप से श्रीविद्या की अधिदेवता त्रिपुरा-सुन्दरी और अवान्तर रूप में उमा (पार्वती), दुर्गा, काली, श्री राधारानी और माता सीता आदि के माध्यम से सृष्टि की आदिशक्ति, योगियों की षट्चक्राधिष्ठात्री कुण्डलिनी शक्ति और सकल ब्रह्माण्ड में स्थूलरूप से स्वयं व्यक्त होने वाली चिति (चिन्मयी) शक्ति के साथ समन्वय करके अद्वैत का प्रतिपादन किया गया है।

त्रिपुरा-सुन्दरी उपासना का दर्शन आत्मानुभूति है और आत्मानुभव के बाद श्रीविद्या को नहीं समझने का कोई स्थान साधक के पास नहीं रह जाता है। आंग्लभाषाविदों ने भी सौन्दर्य लहरी आदि त्रिपुरा-सुन्दरी स्तोत्रों का समालोचन करते हुए शक्ति को परब्रह्म के रूप में स्वीकार किया है।

गुणधर्म विहीन परे व्यापक ब्रह्म का गहराई से ध्यान कर आत्मिक एवं आध्यात्मिक श्रेष्ठता के स्तर तक जाया जा सकता है। श्रेष्ठ स्तर प्राप्ति में आत्मसंयम, समर्पण, दैवी कृपा एवं अनुग्रह मुख्य भूमिका निभाते हैं। धर्माचार्यों की अग्रिम कृपा के बिना भी ये उपकारी वेदशास्त्र परब्रह्म के गुण एवं स्वरूप को प्रकट करते हैं। सगुण, सकल और साकार रूप में भी उसके नाम एवं स्वरूप को सहज मानसिक विचार एवं ध्यान से समझा जा सकता है। त्रिपुरोपासना से भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त हो सकते हैं। जैसा कि कहा गया है -

यत्रास्ति भोग: नहि तत्र मोक्ष:,
यत्रास्ति मोक्ष: नहि तत्र भोग:।
श्रीसुन्दरीसेवनतत्पराणां,
भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव।।

श्रीचक्र की परिकल्पना पर निर्मित है बांसवाड़ा का त्रिपुरासुन्दरी मन्दिर

भारतवर्ष में पराम्बा के अनेक ऐसे सिद्धपीठ एवं मन्दिर हैं, जिनकी आधारशिला शाक्त दर्शन एवं तन्त्र साधना पर अवलम्बित है। राजस्थान के बांसवाड़ा जिले का ऐतिहासिक भगवती त्रिपुरा-सुन्दरी मन्दिर भी उनमें से एक है। बांसवाड़ा से 20 कि.मी. दूर तलवाड़ा के निकट उमराई गाँव के पास वन्य क्षेत्र में स्थित यह देवी तीर्थ बांसवाड़ा जिले की पहचान बन चुका है। त्रिपुरासुन्दरी का यह मन्दिर कितना प्राचीन है, इस सम्बन्ध में कोई लिखित प्रमाण उपलब्ध नहीं है। परन्तु वर्तमान में मन्दिर के उत्तरी भाग में सम्राट कनिष्क के समय का एक शिवलिंग होने से मान्यता है कि यह स्थान कनिष्क के पूर्वकाल से ही प्रतिष्ठित रहा होगा।

कुछ विद्वान तीसरी शताब्दी के पूर्व से इसका अस्तित्व मानते हैं; उनके अनुसार पहले यहाँ एक प्रसिद्ध नगर था, जिसके तीन ओर तीन पुर (वैभवशाली नगर) थे।

शिलालेखों के अनुसार 'श्रीत्रिपुरासुन्दरी' मन्दिर का जीर्णोद्धार 12वीं शताब्दी के आरम्भ में पाता भाई नामक पंचाल ने कराया था। उसके बाद विगत कालखण्डों में अनेक बार जीर्णोद्धार का कार्य हुआ। मन्दिर और परिक्षेत्र का वर्तमान भव्य स्वरूप स्थानीय पंचाल समाज और विगत राज्य सरकार की संयुक्त देन है। गर्भ गृह में काले पत्थर पर पराम्बा की अष्टादश भुजाओं वाली भव्य प्राचीन प्रतिमा प्रतिष्ठित है। सिंहवाहिनी राजराजेश्वरी त्रिपुरा की 18 भुजाओं में दिव्य आयुध हैं। भगवती की प्रतिमा के पृष्ठ-भाग के प्रभामण्डल में नौ छोटी-छोटी देवीमूर्तियाँ हैं जो सायुध स्ववाहनों पर आसीन हैं। मध्य में षोडशी त्रिपुरा और चारों ओर नौ देवियों का यह प्रभामण्डल तन्त्रशास्त्रीय दश महाविद्याओं से सम्बद्ध है। माँ के पृष्ठ भाग में योगिनियों की बहुत ही सुन्दर मूर्तियाँ अंकित हैं। मूर्ति के नीचे पेढ़ी पर श्रीचक्र अंकित है जो त्रिपुरोपासना के बाह्य तथा अन्तःपूजा का प्रतीक यन्त्र है।

लघुकाशी कहे जाने वाले बांसवाड़ा-डूँगरपुर क्षेत्र में यह देवी तीर्थ 'तरतई माता' के नाम से जाना जाता है। स्थानीय वागड़ी भाषा के अनेक शब्द संस्कृत के मूलशब्दों के रूप में सुरक्षित हैं। 'तरतई' शब्द 'त्रितयी' का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ है - त्रित्व (तीन) से युक्त होना।

'सर्वं त्रयं त्रयं यस्मात्तस्मात्तु त्रिपुरा मता।'

अर्थात् जिसमें सब कुछ तीन-तीन की संख्या में विद्यमान हो; यथा- वेदत्रयी, गुणत्रय, देवत्रय, तीन कूट, इच्छा-ज्ञान-क्रिया-तीन शक्तियाँ कालत्रय, आदि; वे ही भगवती त्रिपुरा हैं। ''लघुस्तव'' के चतुर्थ पटल के एक श्लोक में कहा गया है -

'देवानां त्रितयं त्रयी
हुतभुजां शक्तित्रयं त्रिस्वराः
त्रैलोक्यं त्रिपदी त्रिपुष्करमथो
त्रिब्रह्म वर्णास्त्रयः।
यत्किंचित्जगति त्रिधा
नियमितं वस्तु त्रिवर्गादिकं
तत्सर्वं त्रिपुरेति नाम
भगवत्यन्वेति ते तत्त्वतः।।'

भगवती पराम्बा की उपासना योग का उच्चतम स्वरूप है। यह साधना विशुद्ध आध्यात्मिक प्रेम तथा गम्भीर एवं रहस्यात्मक 'पराज्ञान' का मूर्तिमान रूप है। शास्त्रों में कहीं त्रिपुरसुन्दरी तो कहीं त्रिपुरा-सुन्दरी शब्दों का प्रयोग हुआ है, परन्तु तत्त्वतः इनमें कोई अन्तर नहीं है। 'त्रिपुरा' शब्द तीन पुरों की शासिका की आख्या है और षोडशी के रूप में सौन्दर्य की पराकाष्ठा ही भगवती आद्याशक्ति को 'त्रिपुरा-सुन्दरी' नाम से विभूषित करती है।

दुर्गासप्तशती के वैकृतिक रहस्य में वर्णित महालक्ष्मी की अठारह भुजाओं और उनमें स्थित 18 आयुधों का क्रमिक स्वरूप बांसवाड़ा स्थित त्रिपुरासुन्दरी विग्रह में विद्यमान है। कहा गया है -

अष्टादशभुजा पूज्या सा
सहस्त्रभुजा सती।
आयुधान्यत्र वक्ष्यन्ते
दक्षिणाधःकरक्रमात्।।
अक्षमाला च कमलं
बाणोऽसिः कुलिशं गदा।
चक्रं त्रिशूलं परशुः
शंखो घण्टा च पाशकः।।
शक्तिर्दण्डश्चर्म चापं
पानपात्रं कमण्डलुः।
अलंकृतभुजामेभिरायुधैः
कमलासनाम् ।।

त्रिपुरा-सुन्दरी उपासना में धर्म, जाति, वर्ण और लिंग आदि का कोई बन्धन नहीं है। सार्वभौमिक माँ के रूप में श्रीत्रिपुरा-सुन्दरी की उपासना से मनुष्यमात्र के अभ्युदय और निःश्रेयस का मार्ग प्रशस्त होता है।

सार रूप में यह कहना होगा कि भगवती पराम्बा की उपासना योग का उच्चतम स्वरूप है। यह साधना विशुद्ध आध्यात्मिक प्रेम तथा गम्भीर एवं रहस्यात्मक 'पराज्ञान' का मूर्तिमान रूप है। शास्त्रों में कहीं त्रिपुरसुन्दरी तो कहीं त्रिपुरासुन्दरी शब्दों का प्रयोग हुआ है, परन्तु तत्त्वतः इनमें कोई अन्तर नहीं है। 'त्रिपुरा' शब्द तीन पुरों की शासिका की आख्या है और षोडशी के रूप में सौन्दर्य की पराकाष्ठा ही भगवती आद्याशक्ति को 'त्रिपुरा-सुन्दरी' नाम से विभूषित करती है।

भगवान् शिव, दत्तात्रेय, परशुराम, दुर्वासा, गौडपादाचार्य और भगवत्पाद आदिशंकराचार्य प्रभृति शाक्त उपासकों द्वारा प्रारम्भ की गयी त्रिपुरोपासना समस्त साधनाओं का मूलभूत है। यह साधना पूर्णतः वैज्ञानिक और अद्वैत दर्शन पर आधारित है। भगवती त्रिपुरा की उपासना श्रीचक्र पर की जाती है। यह श्रीचक्र शिव और शक्ति दोनों का शरीर है - 'श्रीचक्रं शिवयोर्वपुः'

भौतिक यन्त्रों के समान श्रीचक्र भी अध्यात्मविज्ञान के विद्वानों की आध्यात्मिक खोज का फल है। त्रिपुरासुन्दरी की बाह्यपूजा श्रीचक्र पर और अन्तः पूजा देह में ही श्रीचक्र की भावना करते हुए कुण्डलिनी के जागरण द्वारा शरीरस्थ छः चक्रों का वेधन करने से सम्बद्ध है जिससे अपार शान्ति, अपूर्व तेज और ओज का दिव्य समावेश होता है।

इस प्रकार शक्ति की उपासना पूर्णतः तात्त्विक और वैज्ञानिक है। साधना करते हुए साधक का स्वयं शक्ति सम्पन्न हो जाना (अहं देवी न चान्योस्मि) ही इस साधना का चरम लक्ष्य है। भारतवर्ष में शक्ति उपासना के आधारभूत 51 शक्तिपीठ हैं। इनके साथ ही ऐसे हजारों भव्य और दिव्य मन्दिर हैं जो शक्तिपीठ के ही समान हैं। स्थान अथवा नाम भेद से उनकी महिमा में कोई न्यूनता नहीं आती है। ❑

भारत के मंदिरों का स्वरूप एवं स्थापत्य

बादामी गुफा मंदिर

भारतीय जनमानस में मंदिर धार्मिक स्थान से बहुत अधिक ज्ञान-विज्ञान, खगोल, ज्योतिष और आयुर्वेद शिक्षा की केंद्र रहे हैं। जनकल्याण के कार्यों के लिए राजाओं द्वारा मंदिरों को प्रचुर मात्रा में दान दिया जाता था। मंदिर से प्रत्येक व्यक्ति का जुड़ाव होता था इसलिए मंदिर तक सबकी पहुँच हुआ करती थी। जहाँ-जहाँ मंदिर विकसित हुए वहीं शिक्षण संस्थाओं का विकास हुआ। प्राचीन भारतीय मंदिर आधुनिक अभियांत्रिकी के लिए एक अजूबा हैं। उस समय की तकनीक एवं साधन सुलभता को लेकर वैज्ञानिकों के मन में आश्चर्य है।

डॉ. योगेश कुमार गुप्ता
सहायक आचार्य,
नव मीडिया विभाग,
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय
विश्वविद्यालय (हि.प्र.)

भारतीय संस्कृति में मंदिर धर्म, आस्था एवं विश्वास के प्रतीक हैं। भारतीय संस्कृति में मंदिर केवल धार्मिक केंद्र भर नहीं थे। मंदिर ज्ञान-विज्ञान और ज्योतिष के केंद्र रहे हैं। प्राचीन कालीन मंदिर उस समय के इतिहास और संस्कृति के उद्घोषक हैं। मंदिर उस समय की स्थापत्य और मूर्तिकला के साथ-साथ उस विशिष्ट काल के वैभव एवं समृद्धि के भी चिह्न हैं। वैदिक काल में सर्वप्रथम अग्नि की पूजा के चिह्न मिलते हैं। हड़प्पा और मोहन जोदड़ो की खुदाई से पत्थर और लकड़ी की सरल संरचनाओं में पूजा के अवशेष मिलते हैं। मनुष्य ने ईश्वर के प्रति श्रद्धा निवेदन के लिए गुफाओं को ही मंदिर का रूप दे दिया। कर्नाटक के बादामी गुफा मंदिर, उड़ीसा के उदयगिरि और खंडगिरि गुफा मंदिर एवं अजंता और एलोरा की गुफाओं की प्रसिद्धि संसार भर में है। एलोरा में विशाल गुफा पत्थर को काटकर बनाया गया कैलाश मंदिर आज भी शोध का विषय है। जैसे-जैसे सभ्यता और संस्कृति का विकास हुआ, मंदिरों का रूप भी नया, विशाल एवं समृद्ध होता गया। मंदिर धार्मिक पूजा स्थली के साथ-साथ शिक्षा, समारोह और उत्सवों के माध्यम बन गए। प्राचीन मंदिर इतिहास की उत्कृष्ट वास्तु कला के नमूने हैं। मंदिरों की दीवारों पर उत्कीर्ण आकृतियाँ बताती हैं कि मंदिर प्राचीन काल में सामाजिक केंद्र थे, जहाँ नृत्य, संगीत एवं विभिन्न कलाओं को पर्याप्त सम्मान प्राप्त होता था।

प्राचीन भारतीय मंदिरों के स्वरूप से ज्ञात होता है कि शक्तिशाली से शक्तिशाली राजा अपने वैभव के कीर्तिस्तंभ के रूप में मंदिरों का निर्माण करवाते थे। भारत के प्राचीन राजसी मंदिर उस युग की कीर्ति

गाथा कहते हैं। लगभग एक सहस्राब्दी पूर्व बना तंजावुर का बृहदेश्वर मंदिर चोल साम्राज्य का वैभव प्रतीक चिह्न है। चोल राजा राज प्रथम के द्वारा द्रविड़ शैली में बनवाया गया शिव मंदिर अपनी अभियांत्रिकी और सौंदर्यशास्त्र के कारण विश्व भर में विख्यात है। 212 फीट ऊँचाई वाला ग्रेनाइट पत्थर से बना यह शिव मंदिर विभिन्न कारणों से आज भी वास्तुशास्त्रियों के शोध का विषय है। मंदिर में 29 फुट ऊँचाई का विशाल शिवलिंग विशालतम शिवलिंगों में परिगणित होता है। मंदिर प्रांगण में एक ही चट्टान को काटकर बनाई गई विशाल नंदी की मूर्ति भारत की दूसरी विशालतम मूर्ति है। मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में स्थित खजुराहो मंदिर समूह चंदेल साम्राज्य के वैभव और समृद्धि का प्रतीक है। मध्य काल के इस सर्वोत्कृष्ट स्मारक में हिंदू कला और संस्कृति के सभी तत्त्व विद्यमान हैं। अपनी मिथुन आकृतियों के लिए प्रसिद्ध खजुराहो मंदिर पूर्व में 85 मंदिरों का समूह था जिसकी संख्या अब 25 रह गई है। मंदिर का पश्चिमी समूह हिंदू देवी देवताओं के लिए समर्पित है। विशाल कंदरिया महादेव मंदिर, वराह मंदिर, नंदी मंदिर, लक्ष्मण मंदिर और विश्वनाथ मंदिर के लिए प्रसिद्ध खजुराहो मंदिर यूनेस्को की विश्व विरासत सूची में शामिल है। खजुराहो मंदिर नागर शैली का सर्वोत्कृष्ट मंदिर माना जाता है। हंपी विजयनगर साम्राज्य के राजसी मंदिर के लिए प्रसिद्ध है। तुंगभद्रा नदी के किनारे हंपी स्थित विरुपाक्ष मंदिर एवं विट्ठल मंदिर अपने विस्तार और वैभव के कारण यूनेस्को की विश्व विरासत सूची में शामिल हैं। सातवीं शताब्दी में निर्मित गरुड़ मंदिर अपने शिल्प के लिए विश्व विख्यात है।

हिंदू धर्म में शंकराचार्य द्वारा स्थापित भारत की चार दिशाओं में स्थित चार मठों अथवा चार धामों का विशेष महत्त्व है। भारत की चार दिशाओं में स्थित इन चार धामों की यात्रा भारत के एकीकरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। उत्तर में बद्रीनाथ, पश्चिम में द्वारका, पूर्व में जगन्नाथपुरी एवं दक्षिण में स्थित रामेश्वरम भारतीय धार्मिक जन मानस की आस्था और श्रद्धा के केंद्र हैं। मध्यकाल में अपने-अपने आराध्यों को केंद्र में रखकर शैव, वैष्णव एवं शाक्त जैसे विभिन्न संप्रदाय प्रकाश में आए। शैव संप्रदाय के द्वादश ज्योतिर्लिंग, वैष्णव संप्रदाय के 108 दिव्यदेश, शाक्त संप्रदाय के 51 शक्तिपीठ एवं गणपत्य संप्रदाय के अष्ट विनायक मंदिर हिंदू धर्म आस्था के कीर्ति स्तंभ हैं। प्राचीन काल में सूर्यवंश के मंदिर भी भारत भर में स्थित थे। अभी मोढेरा और कोणार्क में ही सूर्य मंदिर के अवशेष मिलते हैं। अवतारों की लीला स्थलियाँ वर्तमान में मंदिरों के रूप में प्रसिद्ध हैं। अयोध्या, पंचवटी, चित्रकूट, मथुरा एवं वृंदावन राम एवं कृष्ण की लीला स्थली के रूप में हिंदू धर्म के मन मंदिर का सबसे सुंदर विग्रह है। ऋषियों के आश्रम स्थल तपोवनों के रूप में ध्यान और साधना के केंद्र बने हुए हैं। इसके अलावा लोकदेवता एवं कुल देवताओं के मंदिर भी भारतीय धार्मिक हिंदुओं के श्रद्धा मंदिर हैं।

तंजावुर का बृहदेश्वर मंदिर

भारतीय मंदिर अपने विशिष्ट स्थापत्य के कारण विश्व भर में जाने जाते हैं। प्राचीन भारतीय मंदिर अपनी अभियांत्रिकी एवं सौंदर्य के लिए विश्वविख्यात हैं। मंदिर के निर्माण के समय उसके आकार की गणना में एक विशिष्ट गणितीय सिद्धांत का प्रयोग किया जाता है। मंदिर के विस्तार के लिए उसके आकार के गुणात्मक क्रम में ही उसका विस्तार किया जा सकता है। यहाँ तक कि पत्थरों के चुनाव के समय भी किसी एक पत्थर से स्त्री मूर्ति और एक विशिष्ट पत्थर से पुरुष मूर्ति की रचना का भी विधान है। मंदिर मूल रूप से प्राय: चार भागों से निर्मित होता है। मंदिर का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान उसका गर्भगृह होता है। यहाँ मंदिर के मुख्य अधिष्ठाता देवता की मूर्ति को स्थापित किया जाता है। प्राय: यह एक छोटा प्रकोष्ठ होता है जिसमें प्रवेश के लिए छोटा सा द्वार होता है। मंदिर का प्रवेश कक्ष मंडप कहलाता है। यहाँ बड़ी संख्या में भक्तगण इकट्ठा होकर पूजन एवं आराधन करते हैं। मंदिरों पर बने शिखर मंदिर का महत्त्वपूर्ण भाग होते हैं। इन्हें उत्तर भारत में शिखर और दक्षिण भारत में विमान कहा जाता है। मंदिर के अधिष्ठाता देवता की सवारी वाहन के रूप में मंदिर में स्थापित होती है। भारतीय मूर्ति विद्या अथवा प्रतिमा विद्या में क्षेत्र और काल के अनुसार विविधता मिलती है। नागर एवं द्रविड़ शैली में देवी-देवताओं के स्वरूप एवं कथानक में परिवर्तन मिलता है।

भारत में मंदिर निर्माण की दो विशिष्ट शैलियाँ प्रचलित हैं - उत्तर भारत की 'नागर शैली' एवं दक्षिण भारत की 'द्रविड़ शैली'।

कुछ विद्वान नागर एवं द्रविड़ शैली के मिश्रण से एक स्वतंत्र 'बेसर शैली' का भी उल्लेख करते हैं। नागर शैली का प्रसार उत्तर भारत में हिमालय से लेकर विंध्य पर्वतमाला तक है। वास्तु शास्त्र के अनुसार नागर शैली के मंदिरों की पहचान आधार से लेकर सर्वोच्च अंश तक इसकी चतुष्कोणीय आकृति है। नागर शैली के मंदिर एक ऊंची कुर्सी (प्लिंथ) पर बनाए जाते हैं। मंदिर में एक ही अक्ष पर एक दूसरे से संलग्न क्रमशः गर्भगृह, अंतराल, मंडप तथा अर्द्धमंडप प्राप्त होते हैं। गर्भगृह के प्रवेश द्वार के पास मिथुनों या गंगा-यमुना नदी की प्रतिमाएँ होती हैं। गर्भगृह के ऊपर मंदिर का शीर्ष भाग शिखर के नाम से जाना जाता है। उत्तर भारत के शिखर मोड़दार रूप में ऊपर उठे होते हैं। शिखर के ऊपर वर्तुलाकार आमलक स्थित होता है। शिखर के शीर्ष भाग में आमलक के ऊपर एक कलश स्थित होता है। कोणार्क का सूर्य मंदिर, खजुराहो के कंदरिया महादेव एवं विश्वनाथ मंदिर, मोढेरा का सूर्य मंदिर नागर शैली के प्रसिद्ध उदाहरण हैं।

द्रविड़ शैली के मंदिर चारों ओर एक चहारदीवारी से घिरे होते हैं। इस चहारदीवारी के बीच एक प्रवेश द्वार होता है जिसे गोपुरम कहा जाता है। मंदिर का शिखर सीढ़ीदार पिरामिड की तरह ज्यामितीय रूप में ऊपर उठा होता है, जिसे विमान कहा जाता है। दक्षिण भारतीय मंदिरों में गर्भगृह के प्रवेश द्वार के पास भयानक द्वारपालों की प्रतिमाएँ खड़ी की जाती हैं, जो मंदिर के रक्षक के रूप में प्रसिद्ध होती हैं। मंदिर के परिसर में कोई बड़ा जलाशय या तालाब होता है। दक्षिण भारतीय मंदिरों की संरचना भव्य एवं विशाल होती है। महाबलीपुरम का तटीय मंदिर, तंजावुर का राजराजेश्वर या बृहदेश्वर मंदिर, महाबलीपुरम का पाँच रथ मंदिर, बादामी मंदिर, पट्टडकल का विरुपाक्ष मंदिर, ऐहोल का दुर्गा मंदिर और हलेबिड का होयसलेश्वर मंदिर द्रविड़ शैली के आकर्षक नमूने हैं। नागर और द्रविड़ शैली के संयुक्त रूप को बेसर कहा जाता है। इसे चालुक्य शैली भी कहा जाता है। इस शैली के मंदिर विंध्याचल पर्वत से लेकर कृष्णा नदी तक पाए जाते हैं। मध्य भारत तथा कर्नाटक के मंदिरों में प्रायः दोनों शैलियों के संयुक्त रूप का प्रयोग किया गया है।

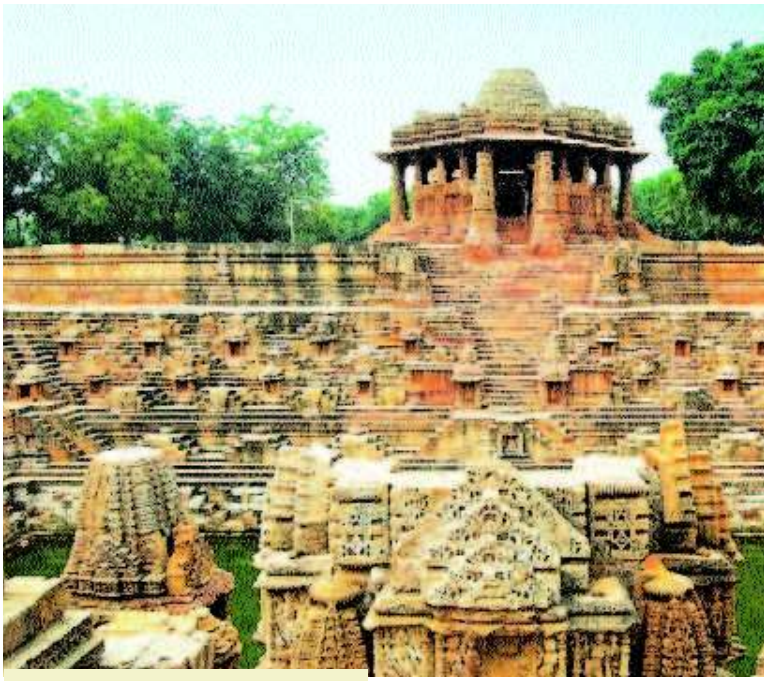

हिंदू धर्म में शंकराचार्य द्वारा स्थापित भारत की चार दिशाओं में स्थित चार मठों अथवा चार धामों का विशेष महत्त्व है। भारत की चार दिशाओं में स्थित इन चार धामों की यात्रा भारत के एकीकरण की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। उत्तर में बद्रीनाथ, पश्चिम में द्वारका, पूर्व में जगन्नाथपुरी एवं दक्षिण में स्थित रामेश्वरम भारतीय धार्मिक जन मानस की आस्था और श्रद्धा के केंद्र हैं। मध्यकाल में अपने-अपने आराध्यों को केंद्र में रखकर शैव, वैष्णव एवं शाक्त जैसे विभिन्न संप्रदाय प्रकाश में आए। शैव संप्रदाय के द्वादश ज्योतिर्लिंग, वैष्णव संप्रदाय के 108 दिव्यदेश, शाक्त संप्रदाय के 51 शक्तिपीठ एवं गणपत्य संप्रदाय के अष्ट विनायक मंदिर हिंदू धर्म आस्था के कीर्ति स्तंभ हैं।

भारतीय जनमानस में मंदिर धार्मिक स्थान से बहुत अधिक ज्ञान-विज्ञान, खगोल, ज्योतिष और आयुर्वेद शिक्षा के केंद्र रहे हैं। जनकल्याण के कार्यों के लिए राजाओं द्वारा मंदिरों को प्रचुर मात्रा में दान दिया जाता था। मंदिर से प्रत्येक व्यक्ति का जुड़ाव होता था इसलिए मंदिर तक सबकी पहुँच हुआ करती थी। जहाँ-जहाँ मंदिर विकसित हुए वहीं शिक्षण संस्थाओं का विकास हुआ। प्राचीन भारतीय मंदिर आधुनिक अभियांत्रिकी के लिए एक अजूबा हैं। उस समय की तकनीक एवं साधन सुलभता को लेकर वैज्ञानिकों के मन में आश्चर्य हैं। आज भारतीय मंदिर भारत का गौरव तो है ही सही, इसके साथ समाज में समरसता, करुणा और दयालुता जैसे मानवीय गुणों का संचार भी कर रहे हैं। ❑

मन्दिरों के वैविध्य का प्रान्त झारखण्ड

डॉ. प्रियंका कुमारी
टी.जी.टी. संस्कृत,
झारखण्ड

झारखण्ड विविधताओं का प्रदेश है, विभिन्नताओं का प्रान्त है, हर पल हर घड़ी नवीन जिजीविषा का राज्य है। भारत का शायद ही कोई प्रदेश इतना वैविध्यपूर्ण है जितना झारखण्ड। अपनी अपूर्व प्रतिभा से प्रतिभासित होता झारखण्ड वस्तुतः सर्वविध वैविध्यता का प्रदेश है। हमारा संविधान हमें धर्मनिरपेक्ष व्याख्यायित करता है। परन्तु गंभीरता से विचार करने पर हमें मालुम होता है कि हमारी संस्कृति धार्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत है। हमारी संस्कृति का आधारपीठ है आस्तिकता, सर्वशक्तिशाली परमेश्वर की जागरूक सत्ता में अटूट विश्वास। इस शाश्वत परम्परा का निर्वहण झारखण्ड में अनवरत हो रहा है। झारखण्ड राज्य में विभिन्न सम्प्रदायों के धार्मिक स्थल मौजूद हैं। हर धर्म के लोग अपने अपने धार्मिक स्थलों पर जा कर अपने धर्म के अनुरूप पूजा अर्चना करते हैं। सनातन हिन्दू धर्म में अनेक देवी देवताओं की पूजा की जाती है। झारखण्ड के अलग अलग स्थलों पर मंदिर बने हुए है। प्रस्तुत पत्र में झारखण्ड के प्रसिद्ध मन्दिरों पर दृष्टिपात करेंगे।

15 नवम्बर 2000 को अस्तित्व में आए झारखण्ड का इतिहास काफी पुराना है। महाभारत काल से लेकर आज तक यह प्रदेश अनेक आरोह-अवरोह का साक्षी रहा है। वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन और बौद्ध ही नहीं अपितु सिक्ख, इसाई और इस्लाम को मानने वाले विभिन्न जाति धर्मों के लोग यहाँ रहते हैं। आदिवासी बाहुल्य इस राज्य में मन्दिरों की अपनी विशेषता है। सनातनी आदिवासी भी मन्दिरों में ही पूजा अर्चना करते हैं।

सम्प्रति झारखण्ड पाँच प्रमंडलों और चौबीस जिलों में विभक्त है। संताल परगना, कोल्हान, पलामु, उत्तरी छोटानागपुर और दक्षिणी छोटानागपुर। इन पाँचों प्रमण्डलों में न केवल क्षेत्रीय विविधता है अपितु धार्मिक वैविध्य भी है। इन प्रमण्डलों के प्रमुख मन्दिरों को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है-

1. संताल परगना प्रमण्डल के मन्दिर इस प्रमंडल का मुख्यालय दुमका है। इसमें दुमका, गोड्डा, पाकुड़,

साहिबगंज, जामताडा और देवघर जिले स्थित हैं। बंगाल और बिहार से इसकी सीमा लगती हैं। इस क्षेत्र में शैव और शाक्त सम्प्रदाय के मन्दिरों का आधिक्य है। जगत् प्रसिद्ध वैद्यनाथ ज्योतिर्लिंग देवघर में स्थित है। दुमका में बासुकिनाथ मंदिर और साहिबगंज में शिवगादी गजेश्वर मंदिर शैव सम्प्रदाय के प्रसिद्ध मन्दिर हैं। शाक्त सम्प्रदाय के मन्दिरों में गोड्डा का योगिनी थान मंदिर, देवघर स्थित जयदुर्गा वैद्यनाथ हार्द शक्तिपीठ आदि महत्त्वपूर्ण मन्दिर हैं। मलूटी मंदिर धार्मिक तथा पुरातात्त्विक विशेषताओं के लिए प्रसिद्ध है। यहाँ मूलत: 108 मन्दिरों का समूह था। सम्प्रति 72 मन्दिर बच पाए हैं। टेराकोटा मंदिर के रूप में भी इन मन्दिरों को जाना जाता है।

2. कोल्हान प्रमंडल के मन्दिर – यह प्रमंडल बंगाल और उड़िसा के साथ अपनी सीमा साझा करता है। जमशेदपुर, चाईबासा और सरायकेला खरसावाँ तीन जिले इस प्रमंडल में आते हैं। वनों से आच्छादित इस प्रमण्डल में छोटे बड़े अनेक मन्दिर हैं। इसमें रंकिणी मंदिर अत्यन्त प्रसिद्ध है, जो जादुगुडा, जमशेदपुर में अवस्थित है। यह भगवती काली को समर्पित है। इसी प्रकार पूर्वी सिंहभूम के आसनबनी की हाथीबिंदा पंचायत के साधुडेरा गाँव में भगवान शंकर का कालेश्वर मंदिर है। यह लगभग 250 वर्ष पुराना है। इस मन्दिर

पर्यटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण मन्दिर है वैद्यनाथ धाम देवघर, पहाड़ी मन्दिर राँची, जगन्नाथपुर मन्दिर राँची, सूर्य मन्दिर बुण्डू, पारसनाथ जैन मन्दिर गिरिडीह, भद्रकाली मन्दिर इटखोरी (चौपारण), छिन्नमस्तिका मन्दिर रजरप्पा, देवडी मन्दिर तमाड, कुलबोंगा महादेव, सारंडा, बासुकिनाथ धाम दुमका आदि ।

में युगल शिवलिंग है, जो एक ही स्थल पर है और स्वयं जागृत है। मात्र छ: ईंच पर एक साथ दो शिवलिंग स्वयं में अद्‌भुत है।

3. पलामू प्रमंडल के मन्दिर – यह प्रमंडल बिहार, उत्तरप्रदेश और छत्तीसगढ़ से अपनी सीमा साझा करता है। इस प्रमंडल में डाल्टेनगंज, गढ़वा और लातेहार जिले हैं। यह क्षेत्र मंदिरों के लिए भी विख्यात है। मुख्य रूप से उग्रतारा मंदिर लातेहार का प्रसिद्ध है। डाल्टेनगंज का शिव – दुर्गा मन्दिर नवीन मंदिर है। यहीं एक परशुराम मन्दिर का भी निर्माण प्रक्रियाधीन है। समस्त मन्दिर आस्था के केन्द्र हैं।

4. उत्तरी छोटानागपुर के मन्दिर – झारखण्ड के इस प्रमण्डल के अन्तर्गत हजारीबाग, धनबाद, बोकारो, कोडरमा, गिरिडीह, चतरा और रामगढ़ जिले अवस्थित हैं। छिन्मस्तिका मंदिर (रजरप्पा) रामगढ़, भद्रकाली मंदिर चतरा, झारखण्ड धाम मंदिर गिरिडीह, प्राचीन शिव मंदिर, कैथा रामगढ, शक्ति मंदिर धनबाद, लिल्लोरी मंदिर धनबाद और भूफोर मंदिर धनबाद प्रसिद्ध मन्दिर हैं।

5. दक्षिणी छोटानागपुर के मन्दिर – झारखण्ड के इस प्रमण्डल के अन्तर्गत राजधानी राँची, खूँटी, लोहरदगा, गुमला और सिमडेगा जिले सम्मलित हैं। जगन्नाथ मंदिर रांची, देवड़ी मंदिर रांची, महामाया मंदिर गुमला, सूर्य मंदिर रांची, टांगीनाथ धाम मंदिर गुमला, अंजन धाम मंदिर (अंजन ग्राम) गुमला, मदन मोहन मंदिर, बोड़ेया कांके रांची, पहाड़ी मंदिर रांची और आम्रेश्वर धाम खूंटी प्रसिद्ध मन्दिर हैं।

झारखण्ड के समस्त मन्दिरों में देवघर स्थित बाबा वैद्यनाथ का मन्दिर द्वादश ज्योर्लिंग में मनोकामना लिंग के रूप में ख्यातिप्राप्त है। विश्व भर के पर्यटक इस मन्दिर में सालों भर आते रहते हैं। सावन माह में यहाँ की छटा देखते ही बनती है। सम्प्रति झारखण्ड में कुछ मन्दिर पर्यटन की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें प्रमुख है वैद्यनाथ धाम देवघर, पहाड़ी मन्दिर राँची, जगन्नाथपुर मन्दिर राँची, सूर्य मन्दिर बुण्डू, पारसनाथ जैन मन्दिर गिरिडीह, भद्रकाली मन्दिर इटखोरी (चौपारण), छिन्नमस्तिका मन्दिर रजरप्पा, देवडी मन्दिर तमाड, कुलबोंगा महादेव, सारंडा, बासुकिनाथ धाम दुमका आदि।

झारखण्ड के मन्दिर विभिन्न सनातन संस्कृतियों के संगम स्वरूप हैं। वनप्रदेश होने के कारण पठारों, कन्दराओं और नदी तटों पर आस्था के केन्द्र सदियों पुराने हैं। कालक्रम में कुछ विलुप्त होने की स्थिति में भी हैं। हमें उनके पुरातन स्वरूप को प्रकट करने का प्रयास करना चाहिए। ❑

भारत के प्रमुख राम मन्दिर

डॉ. कमल कौशिक
डी.लिट. प्रधानाचार्य,
श्री कृष्ण इ. कॉ. गोकुल,
मथुरा (उ.प्र.)

प्रभु श्री राम को भगवान विष्णु का अवतार माना जाता है। सनातन के कण-कण में प्रभु श्री राम व्याप्त हैं। उनकी मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में मान्यता है उन्होंने मर्यादा पालन हेतु राज्य, माता-पिता, मित्र तक का त्याग सहर्ष कर दिया। भारत के साथ-साथ नेपाल, कम्बोडिया, थाइलैण्ड, इण्डोनिशिया सहित कई अन्य देशों में पूजनीय हैं। सर्वोत्तम शासन व्यवस्था को राम राज्य कहा जाता है। श्री राम का व्यक्तित्व आदर्श पुरुष, जन कल्याणक लोकहितकारी मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में सर्व मान्य है। इनका अवतार त्रेता युग में हुआ था। श्री राम को आदर्श रूप में पूज्य होने के कारण भारत ही नहीं अपितु अनेक देशों में श्रीराम के मंदिर हैं। यहाँ कुछ प्रमुख भारतीय राम मंदिरों का उल्लेख वर्णित है।

राम मन्दिर अयोध्या (उ.प्र.)

अयोध्या को राम जन्मभूमि के रूप में मान्यता है। इसे मनु महाराज ने बसाया था। अयोध्या को साकेत अवधपुरी और रामनगरी भी कहा जाता है। अयोध्या में ईसा से 100 वर्ष पूर्व सम्राट विक्रमादित्य ने दिव्यराम मंदिर का निर्माण कराया था। शुंग शासक पुष्य मित्र शुंग ने राम मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था। चीनी यात्री फाहियान ने श्री राम मंदिर का उल्लेख किया है। 7वीं शताब्दी में चीनी यात्री हेनत्सांग ने भी अयोध्या के राम मंदिर का उल्लेख किया है। 11वीं सदी के पश्चात अयोध्या राम मंदिर का संघर्ष जटिल हो गया। मंदिर को आक्रांताओं ने नष्ट करने का प्रयास किया। अयोध्या राम मंदिर के प्रति प्रत्येक सनातनी आग्रही रहा है। विगत 134 वर्षों में लगातार न्यायिक प्रक्रिया एवं संघर्ष के सुपरिणाम से 492 वर्ष पश्चात अब एक दिव्य भव्य राम मंदिर का निर्माण नागरा शैली में हो रहा है। यह मंदिर सरयू के पावन तट पर अवस्थित है जिससे भगवान राम का बाल रूप में पूजन होता है। वर्तमान मंदिर विश्व के सबसे बड़े राम मंदिरों में से एक है। 67 एकड़ में यह परिसर है जिसमें 10 एकड़ में भव्य मंदिर का निर्माण हो रहा है जिसमें 318 खम्भे, 5 मंडप हैं शिखर की ऊँचाई 161 फीट है। 57 एकड़ में प्रार्थना कक्ष वैदिक पाठशाला रामकथा कुंज, संत निवास यात्री निवास एवं संग्रहालय का निर्माण हो रहा है। प्रभु श्री राम की प्राकट्यस्थली होने के कारण विश्व भर के अनेक देशों से लाखों तीर्थयात्री श्रद्धालु, शोधकर्ता वर्ष भर अयोध्या आते हैं। दीपावली, रामनवमी यहाँ के प्रमुख त्यौहार हैं ।

राम राजा मन्दिर ओरछा (म.प्र.)

भगवान प्रभु श्री राम का मंदिर ओरछा म.प्र. में झाँसी से 13 किमी दूर अवस्थित हैं। यह मंदिर वेतवा नदी के तट पर अवस्थित है। यहाँ प्रभु श्री राम का पूजन राजा के रूप में होता है। मंदिर में राम, सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव और नरसिंह भगवान की मूर्तियाँ हैं। हनुमान जी और जामवंत जी सीता माता के चरणों में आराधना करते हुए विराजमान हैं। भगवान श्री राम को यहाँ प्रतिदिन गार्ड ऑफ आनर (सशस्त्र सलामी) दी जाती है।

कनक भवन मन्दिर अयोध्या

श्री राम जन्मभूमि में अवस्थित कनक भवन मंदिर प्राचीन सबसे अच्छे मंदिरों में माना जाता है। इस मंदिर के नाम के पीछे एक ऐतिहासिक कथा है। भगवान स्वर्ण सिंहासन पर विराजित हैं। माता जानकी

एवं प्रभु श्रीराम स्वर्ण आभूषणों में द्रष्टव्य हैं। मुख्य दीवार पूर्व की ओर है जिससे सूर्योदय की वेला में इस मंदिर की भव्यता अवर्णनीय है।

कालाराम मंदिर नासिक महाराष्ट्र

काला राम मंदिर प्रभु श्री राम के प्रमुख मंदिरों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह नासिक के पंचवटी क्षेत्र में अवस्थित है। यहाँ प्रभु श्रीराम की दो फुट की काले रंग की प्रतिमा है। इस मंदिर में देवी सीता और लक्ष्मण की मूर्तियाँ हैं। भगवान श्री राम की मूर्ति गोदावरी नदी से प्राप्त हुई थी मान्यता है कि चौदह वर्ष के बनवास में 10वें वर्ष में भगवान श्री राम माता सीता और लक्ष्मण यहाँ रहे थे। सरदार रंगाऊओढेकर को स्वप्न आया था कि गोदावरी में प्रभु श्री राम की मूर्ति है। इस मूर्ति को लाकर मंदिर में स्थापना ओढ़ेकर द्वारा की गई।

कोडन्डा रामस्वामी मंदिर चिक्कमंगलूरू कर्नाटक

कोडन्डा रामास्वामी मंदिर भारत के प्रभु श्री राम के सर्वमान्य मंदिरों में प्रमुख स्थान रखता है। यह चिक्कमबंगलूरू हिल्स में अवस्थित है। यह मंदिर बेलूरू से 250 किमी की दूरी पर है। हिरा मंगलूरू में परशुराम भगवान ने प्रभु श्रीराम से अपनी शादी का दृश्य दिखाने का अनुरोध किया था। इसी अनुरोध पर कोंदड़ा मन्दिर में रामास्वामी की मूर्तियाँ हिन्दू विवाह पद्धति की परम्पराओं के अनुसार अवस्थित हैं। जहाँ माता जानकी, राम और लक्ष्मण के दाहिनी ओर खड़ी हैं और लक्ष्मण को तीर पकड़कर चित्रांकित किया गया है।

रामास्वामी मंदिर कुंभ कोणम तमिलनाडु-

रामास्वामी मंदिर तमिलनाडु का प्रमुख मंदिर है। इसे दक्षिण भारत की अयोध्या के रूप में मान्यता है। यह प्राचीनतम राम मंदिरों में से है। यह मंदिर 18वीं सदी में बेहतरीन नक्काशी और आलीशान पत्थरों से निर्मित है। अच्युत नायक ने मंदिर का निर्माण कराया था। इसकी सुन्दरता अतुलनीय है। मंदिर में बैठे हुए सीता और राम की छवि को चित्रित किया है। लक्ष्मण भरत खड़े हुए हैं। हनुमान प्रार्थना करते हुए दृष्टव्य हैं। यहाँ राम नवमी पर सर्वाधिक दर्शनार्थी रहते हैं।

रामायण मंदिर पटना बिहार

यह राम मंदिर दुनिया का सबसे बड़ा राम मंदिर है। यह मंदिर 125 एकड़ में बन रहा है। मंदिर में 15 शिखर होंगे सबसे ऊँचा शिखर 279 फुट का होगा। इस मंदिर में 20000 की क्षमता का हॉल होगा। इस मंदिर में श्री राम व जानकी की प्रमुख मूर्तियाँ होंगी। इसके अतिरिक्त 16 अन्य मंदिर होंगे। इस मंदिर के स्थान के बारे में मान्यता है कि माता जानकी से विवाह के उपरान्त भगवान श्रीराम व जानकी की बारात इसी स्थान पर रूकी थी।

भुवनेश्वर राम मंदिर खारवेल नगर ओडिसा

यह राममंदिर ओडिशा का प्रमुख हिंदू मंदिर है। इस मंदिर में श्री राम, माता जानकी एवं लक्ष्मण की मूर्तियाँ हैं। इस मंदिर का शिखर प्रमुख आर्कषण है। मंदिर की वास्तुकला अलौकिक है। मंदिर को सफेद पत्थर के साथ पीयरलेस डिजाइन और बहुरंगी स्टोन से सजाया गया है। प्रमुख पर्व रामनवमी विवाह पंचमी, जन्माष्टमी, पान संक्राति हैं। रक्षाबंधन पर मेला भी लगता है।

श्री राम मंदिर रामटेक नागपुर

रामटेक मंदिर भारत में प्रसिद्ध राम मंदिर है। यह मंदिर महाराष्ट्र में नागपुर से 40 किमी पर अवस्थित है। वनवास में 4 माह का बारिश का समय प्रभु श्री राम, माता जानकी व लक्ष्मण ने यहीं व्यतीत किया। माता जानकी ने यहाँ प्रथम रसोई बनायी थी। यहाँ उन्होंने स्थानीय ऋषि मुनियों को भोजन कराया यह पदम पुराण में वर्णित है। यह सुर नदी के निकट पत्थरों को एक दूसरे पर टेक कर बनाया गया है। यह किले के सादृश्य है। मंदिर के शिखर पर ज्योति प्रकाशित होती है। जिसमें प्रभु राम का अक्स दिखता है। यहीं प्रभु राम को अगस्त्य मुनि ने शस्त्रों का ज्ञान दिया और ब्रह्मास्त्रप्रदान किया। यहीं पर कालिदास ने मेघदूत की रचना की थी। रामटेक मंदिर का निर्माण राजा रघु खोले ने कराया था।

राम चौरा मंदिर हाजीपुर बिहार

राम चौरा मंदिर वैशाली जिले के रामभद्र में अवस्थित है। राम चौरा मंदिर के विषय में मान्यता है कि यह रामायण काल से अस्तित्व में है। प्रभु श्री राम ने जनकपुर जाते समय इस स्थान का दौरा किया था। यहाँ प्रभु राम के चरण चिन्हों का पूजन होता है। यहाँ राम नवमी पर मेला का आयोजन होता है। यहीं प्रभुराम

ने अपना मुंडन कराया था। यहाँ राम नवमी पर बेल का प्रसाद लगता है।

रघुनाथ मंदिर जम्मू

यह मंदिर जम्मू में स्थित है। इस मंदिर का निर्माण राजा गुलाब सिंह ने 1835 में प्रारम्भ किया जो राजा रणवीर के समय में 1857 में पूर्ण हुआ। इसकी कलात्मकता का वैशिष्टय है। इस मंदिर के कई हिस्सों में सोना लगा हुआ है। जोकि तेज का स्वरूप है। इस मंदिर में श्री राम, सीता एवं लक्ष्मण की विशाल मूर्तियाँ हैं। यहाँ 33 करोड़ देवी देवताओं के लिंगम भी बने हुए हैं। यह मंदिर श्री राम को समर्पित है। मान्यता यह है कि यहाँ भक्तों की इच्छाएँ प्रभु श्री राम पूर्ण करते हैं। राम नवमी पर भगवान राम की झाँकी के साथ पुलिस व सुरक्षा बल की टुकड़ियाँ ऐसे चलती हैं जैसे राजा महाराजाओं के समय से चला करती थीं।

श्री सीतारामचंद्र मंदिर भद्राचलम् तेलंगाना

श्री सीता रामचंद्र स्वामी मंदिर तेलंगाना के भद्राचलम में गोदावरी नदी के तट पर अवस्थित सुप्रसिद्ध मंदिर है। यहाँ भगवान राम की चतुर्भुज मूर्ति अद्वितीय है। यह 17वीं सदी का मंदिर है। इसे दक्षिण की अयोध्या भी कहा जाता है। यह दिव्य क्षेत्र माना जाता है। इसे भद्राचलम् मंदिर भी कहते हैं। भगत भद्र को आशीर्वाद देने के लिए प्रभु श्री राम स्वयं स्वर्ग से आये थे। और भद्र को आश्वासन दिया कि इसी जगह सदैव श्रद्धालुओं के मध्य रहेंगे। भद्रचलम् के निकट पर्णशाला स्थान पर प्रभु श्री राम ने वनवास का कुछ समय व्यतीत किया था। यहाँ माता सीता के चरण चिन्हों का पूजन होता है। यहाँ लगभग 5 हजार श्रद्धालु प्रतिदिन आते हैं। रामनवमी, बैकुंठ एकादशी कार्तिक पूर्णिमा प्रमुख पर्व हैं।

प्रियार श्री रामा मंदिर त्रिशूर केरल

प्रियार मंदिर केरल के त्रिशूर से 25 किलोमीटर दक्षिण पश्चिम में अवस्थित है। यह मंदिर श्री राम को समर्पित है। मूर्ति

अयोध्या में ईसा से 100 वर्ष पूर्व सम्राट विक्रमादित्य ने दिव्यराम मंदिर का निर्माण कराया था। शुंग शासक पुष्य मित्र शुंग ने राम मंदिर का जीर्णोद्धार कराया था। चीनी यात्री फाहियान ने श्री राम मंदिर का उल्लेख किया है। 7वीं शताब्दी में चीनी यात्री हेनत्सांग ने भी अयोध्या के राम मंदिर का उल्लेख किया है। 11वीं सदी के पश्चात अयोध्या राम मंदिर का संघर्ष जटिल हो गया। मंदिर को आक्रांताओं ने नष्ट करने का प्रयास किया। अयोध्या राम मंदिर के प्रति प्रत्येक सनातनी आग्रही रहा है।

का रूप विशेष है। चतुर्भुज विष्णु का रूप और राम दानव काड़ा पर विजेता के रूप में दर्शित है। ब्रह्मा और शिव जी के अंश भी इस मूर्ति में सम्मिलित हैं। इस कारण इसे त्रिमूर्ति माना जाता है। मान्यता है भगवान कृष्ण, भगवान राम की इस चर्तुभुजी मूर्ति की पूजा करते थे। भगवान कृष्ण के स्वर्गारोहण होने पर इस मूर्ति को समुद्र में विसर्जित कर दिया था। बाद में पुनः स्थापित किया गया। मन्दिर का निर्माण कैमल नाम के राजा ने कराया था। यहाँ लकड़ी की शानदार नक्काशी है। मंदिर के गर्भ गृह में रामायण के चित्र दर्शित हैं। मान्यता है कि जो भक्त यहाँ दर्शन करता है वह अपने आस-पास की सभी बुरी आत्माओं से मुक्त हो जाता है।

भगवान राम का प्रमुख मंदिर चित्रकूट राम मंदिर

जनपद चित्रकूट उ. प्र. के बुंदेलखंड क्षेत्र में स्थित है। यहाँ प्रभु राम ने वनवास के 11 वर्ष 11 माह 11 दिन बिताए थे। यहाँ वे काफी समय तक अनुसुइया आश्रम में रहे थे। भरत प्रभु श्री राम को अयोध्या वापिसी हेतु लेने आये थे वहाँ भरत मिलाप मंदिर है। चित्रकूट में प्रमुख रूप से कई आश्रम हैं। जिनमें वाल्मीकि आश्रम, माण्डव्य आश्रम, भरत कूप आदि शामिल हैं। यहाँ प्रसिद्ध राम दर्शन मंदिर आध्यात्मिक अनुभव से अधिक प्रदान करता है। इस मंदिर में पूजा और प्रसाद पर पूर्ण प्रतिबंध है।

श्रीराम तीर्थ मंदिर अमृतसर पंजाब

श्री राम तीर्थ मंदिर भगवान राम को समर्पित मंदिर है। मान्यता है कि यहाँ महर्षि वाल्मीकि का आश्रम था। भगवान राम ने माता जानकी का परित्याग किया था तो यहीं वाल्मीकि जी ने उन्हें आश्रय दिया था। लव और कुश का जन्म यहीं हुआ। 24 हजार छंद की रामायण यहीं लिखी गई थी। यहीं रामतीर्थ पर भगवान रामचंद्र की सेना व लव और कुश के बीच युद्ध हुआ था।

राम मंदिर कुल्लू - हिमाचल प्रदेश

राम मन्दिर कुल्लू में भगवान राम की सीता और हनुमान मूर्तियाँ सन् 1650 में अयोध्या से लायी गयी थी। इन मूर्तियों को 10 वर्षों तथा मणिकर्ण में रखा गया था। मणिकर्ण को राम नगरी भी कहा जाता है। इन मूर्तियों को दामोदर दास नामक व्यक्ति कुल्लू के राजा जगत सिंह के निर्देश पर अयोध्या से लाया था। इन मूर्तियों विषयक मान्यता है कि यह मूर्तियाँ अश्वमेध यज्ञ के समय की है। राजा जगत सिंह राम मंदिर का निर्माण करवाने के उपरान्त अपना समग्र राजपाट भगवान रघुनाथ को सौंपकर स्वयं भगवान रघुनाथ के छड़ीवरदार बनके रहे। यह छड़ीव की परम्परा अद्यतन गतिमान है।

हजारा राम मंदिर हम्पी कर्नाटक

हजारा राम मंदिर का निर्माण राजा कृष्ण देवराय ने कराया था। यह मंदिर अदभुत नक्काशीद्वार मूर्तियों के लिये प्रसिद्ध है। भगवान विष्णु को समर्पित सर्वाधिक लोकप्रिय मंदिरों में से एक है। मंदिर की मूर्तियाँ रामायण में घटी महत्त्वपूर्ण घटनाओं का प्रतिनिधित्व करती है। मंदिर में चार नक्काशीदार ग्रेनाइट के स्तम्भ अत्यन्त प्रभावित करने वाले हैं। यह मंदिर स्थापत्य और सांस्कृतिक विरासत समेटे हुये हैं। ❑

भारत के मंदिरों का स्वरूप और विकास

प्रो. आलोक कुमार चक्रवाल
कुलपति, गुरु घासीदास विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छ.ग.)

मंदिर शब्द संस्कृत वांग्मय में अधिक प्रचलित नहीं है। महाकाव्य और सूत्रग्रंथों में मंदिर की अपेक्षा देवालय, देवायतन, देवकुल, देवगृह आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। मंदिर का सर्वप्रथम उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में मिलता है। शंखायन श्रोतसूत्र में प्रासाद को दीवारों, छत तथा खिड़कियों से युक्त कहा गया है। वैदिक युग में प्रकृति देवों की पूजा का विधान था। इसमें दार्शनिक विचारों के साथ रुद्र तथा विष्णु का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में रुद्र प्रकृति, वनस्पति, पशुचारण के देवता तथा विष्णु यज्ञ के देवता माने गए हैं। बाद में उत्तरवर्ती वैदिक साहित्य में विष्णु देवताओं में श्रेष्ठ माने गए।

भारत की प्राचीन स्थापत्य कला में मंदिरों का विशिष्ट स्थान है। भारतीय संस्कृति में मंदिर निर्माण के पीछे यह सत्य छुपा था कि ऐसा धर्म स्थापित हो जो जनता को सहज व व्यावहारिकता से प्राप्त हो सके। इसकी पूर्ति के लिए मंदिर स्थापत्य का प्रादुर्भाव हुआ। इससे पूर्व भारत में बौद्ध एवं जैन धर्म द्वारा गुहा, स्तूपों एवं चैत्यों का निर्माण किया जाने लगा था। कुषाण काल के बाद गुप्त काल में देवताओं की पूजा के साथ ही देवालयों का निर्माण प्रारंभ हुआ।

प्रारंभिक मंदिरों का वास्तु विन्यास बौद्ध विहारों से प्रभावित था। इनकी छत चपटी तथा इनमें गर्भगृह होता था। मंदिरों में रूपविधान की कल्पना की गई और कलाकारों ने मंदिरों को साकार रूप प्रदान करने के साथ ही देह रूप में स्थापित किया। चौथी सदी में भागवत धर्म के अभ्युदय के पश्चात भगवान की प्रतिमा स्थापित करने की आवश्यकता प्रतीत हुई। अतएव वैष्णव मतानुयायी मंदिर निर्माण की योजना करने लगे।

मंदिर स्थापत्य की दृष्टि से गुप्तकाल भारतीय कला के इतिहास में महत्त्वपूर्ण काल खंड माना जाता है। गुप्त राजवंश के कालखंड में उनके साम्राज्य की सीमाओं में जिस कला का विकास हुआ उसे गुप्तकला कहा जाता है, किंतु कलाविदों ने गुप्त काल की बड़ी लचीली परिभाषा दी है तथा गुप्तों की समकालीनता में उनके साम्राज्य की सीमाओं के बाहर की कलाकृतियों को भी गुप्तकाल की संज्ञा दी है।

गुप्तकाल में पहली बार पकी हुई ईंट व पत्थर की सहायता से शिखर युक्त मंदिर का निर्माण हुआ, जबकि इसके पूर्व के मंदिरों में शिखरयुक्त मंदिर नहीं प्राप्त होते हैं। गुप्त मंदिर स्थापत्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि कला शैली की दृष्टि से आदिम नागर व आदिम द्रविड़ शैली का प्रतीत होता है अर्थात् गुप्त मंदिर स्थापत्य से ही आगे चलकर नागर एवं द्राविड़ शैलियों का स्वरूप निर्धारित हुआ।

भारत में मंदिर स्थापत्य की तीन शैलियां विकसित थी, जो निम्न हैं-

नागर शैली

नागर शैली का क्षेत्र संपूर्ण उत्तर भारत में है, जिसे मुख्यत: तीन उप क्षेत्रों में बाँटा जा सकता है -

1. मध्यदेश की कला विशेषकर चंदेलों की खजुराहो की कला जो शुद्ध रूप से नागर शैली का प्रतिनिधित्व करती हैं।

2. उड़ीसा या कलिंग क्षेत्र की कला

3. उत्तर-पश्चिम में गुजरात व राजस्थान क्षेत्र की कला।

नागर शैली के मंदिरों की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं - नागर शैली के मंदिरों के तल विन्यास में पाँच विशिष्ट अंग प्राप्त होते हैं। ये पाँच अंग अर्धमंडप, मण्डप, महामंडप, अंतराल और गर्भगृह के नाम से जाने जाते हैं। इसी प्रकार तल विन्यास में भी दो प्रमुख भेद सन्धार और निरंधार मंदिर के रूप में प्राप्त होते हैं। सन्धार मंदिर वे मंदिर हैं जिनके गर्भगृह में दोहरी दीवारें प्राप्त होती है और उनके बीच में प्रदक्षिणापथ प्राप्त होता है जबकि निरंधार मंदिर के गर्भगृह में एक दीवार पाई जाती है और इसमें प्रदक्षिणापथ नहीं पाया जाता है।

ऊर्ध्वाविन्यास में विकसित नागर मंदिरों में पद या अधिष्ठान, शिखर, जंघा, ग्रीवा/कंठ, शीर्ष या कपाल जैसे अंग प्राप्त होते हैं। चूँकि नागर शैली के क्षेत्रीय उपभेद है अत: इन अंगों के क्षेत्रीय नामकरण भी प्राप्त होते हैं। विशेषकर उड़ीसा के क्षेत्र में प्रवेश द्वार से गर्भगृह तक जो पाँच अंक मिलते हैं, वे भोगमंडप, नटमंडप, जगमोहन अंतराल देउल के विशिष्ट नाम से जाने जाते हैं। उड़ीसा में एक और विभिन्नता देखने को मिलती है यहाँ के मंदिरों की संपूर्ण संरचना जिस प्रांगण में मिलती है उसे प्राचीर से घेरा गया है जिसे प्राकार कहते हैं। यह कलिंग की विशिष्ट शैली है, क्योंकि प्रांगण के चारों ओर प्राकार बनाने की परंपरा द्रविड़ शैली की परंपरा है। उत्तर भारत में उड़ीसा में यह परंपरा अपवाद स्वरूप मिलती है।

ध्यातव्य है कि नागर शैली के मंदिर गंगा-यमुना के दो-आब वाले क्षेत्र को छोड़कर अन्यत्र पत्थर से बनाए गए हैं। इन मंदिरों में पत्थरों की जुड़ाई में मसालों का प्रयोग नहीं किया गया। अपितु ये पत्थर अपने ही भार से यथास्थान टिके हैं। दबाव से पत्थरों में जो घर्षण होता है, उससे पत्थर बाहर न खिसके इसके लिए पत्थरों के किनारे को अंदर की ओर टंकाई करके काटा गया है।छिद्रों के निर्माण में मेहराबों का प्रयोग न करके उनके स्थान पर कदलिका कर्ण तकनीकी का प्रयोग किया गया है।

प्राय सभी नागर मंदिरों की बाह्य दीवारों पर देवी-देवताओं,अलंकरण, अभिप्राय, राजपरिवार, जन समान आदि के दृश्य अंकित मिलते हैं। वस्तुत: मंदिर स्थापत्य के साथ-साथ मूर्तिकला और चित्रकला उसकी सहायक कला के रूप में विकसित होते हुए सामने आते हैं।

बेसर शैली

नागर तथा द्रविड़ शैलियों के सम्मिश्रण से मंदिर का जो नवीन रूप निर्धारित हुआ उसी को बेसर शैली के नाम से संबोधित किया गया है। परवर्ती चालुक्यों तथा होयसलों ने इस शैली को प्रश्रय एवं प्रोत्साहन दिया, इसलिए अधिकांश पुरातत्ववेत्ता इसे चालुक्य शैली के नाम से भी संबोधित करते हैं।

आधुनिक शोधों में परवर्ती चालुक्य और होयसल काल में आंध्र एवं कर्नाटक क्षेत्र के मंदिरों को बेसर शैली के अंतर्गत रखा गया है। इस शैली के प्रमुख मंदिरों में मैसूर का मंदिर, सोमनाथपुर का केशव मंदिर, वेल्लूर का छेन्ना केशव मंदिर प्रमुख हैं। इसके अलावा मैसूर व आंध्र क्षेत्र में 11 वीं से 13 वीं शती के बीच व इसके बाद बहुसंख्यक ऐसे मंदिर दिखाई पड़ते हैं जो आकार, प्रकार और स्वरूप की दृष्टि से द्रविड़ के न होकर बेसर शैली के माने जाते हैं। इस शैली की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

तल विन्यास के अंतर्गत बेसर शैली का मंदिर एक बड़े प्रांगण में निर्मित है, जिसे प्राकार से घेरा गया है। इन प्राकारों में चार या दो प्रमुख दिशाओं में गोपुरम प्राप्त होता है। प्रांगण के केन्द्रीय भाग में मुख्य मंदिर प्राप्त होता है। इन मंदिरों में तीन प्रमुख अंग स्तंभ पर आधारित रंगमंडप, अंतराल और गर्भगृह मिलते हैं। ऊर्ध्व विन्यास में तारे के आकार की बहुकोणीय जगती प्राप्त होता है।

अधिष्ठान काफी ऊँचा होता था। अधिष्ठान में भी जगती के कोणों के अनुरूप खड़ी पट्टियाँ या रथ योजना द्वारा कोण बने हुए प्राप्त होते हैं। गर्भगृह में बहुत छोटे आकार का बेसर शैली का शिखर बना दिखाई देता है। रंगमंडप या गूढ़मंडप के ऊपर सपाट छत मिलती है।

बेसर शैली के मंदिरों के तल विन्यास में कई गर्भगृहों का समूह एक ही मंदिर के रूप में इस प्रकार बनाया जाता था कि वे स्थापत्य की एक इकाई के प्रतीक हैं। इस शैली के मंदिर महीन नक्काशी और सुन्दर मूर्ति के लिए विख्यात हैं। मुख्य प्रांगण में मंदिर के चारों ओर स्तंभयुक्त मंडप तथा अन्य संरचनाएँ भी प्राप्त होती हैं। हाथी दांत की नक्काशी कला का स्पष्ट प्रभाव बेसर शैली की मूर्तिकला पर दिखाई पड़ता है।

द्रविड़ शैली

द्रविड़ शैली का समीकरण विंध्य के दक्षिण से लेकर प्रायद्वीपीय भारत तक के विस्तृत भू-भाग में विकसित स्थापत्य कला से किया जाता है। मानसार द्रविड़ परंपरा का प्राचीनतम शिल्पशास्त्रीय ग्रंथ है जिसमें द्रविड़ मंदिरों को विमान कहा गया है। कलाविदों ने विमान शब्द के दो अर्थ लगाए हैं पहला जगती से लेकर शिखर तक मंदिर की संपूर्ण संरचना तथा दूसरा चौकोर गर्भगृह तथा उसके ऊपर निर्मित तलबद्ध योजना वाला शिखर विमान कहलाता था। प्रारंभ में ये मंदिर ऐसे उत्पादनों से निर्मित होते रहे होंगे जो शीघ्र ही नष्ट हो जाते थे जैसे लकड़ी, मिट्टी, घास, फूस आदि। संभवत: यही कारण है कि द्रविड़ मंदिर के प्राचीनतम स्वरूप का ज्ञान पुरातात्विक प्रमाणों से ही होता है।

इस शैली के मंदिरों का निर्माण सर्वप्रथम दक्षिण भारत में पल्लवों ने महाबलीपुरम के एक एकाश्मक रथ मंदिरों के रूप में करवाया। इसके पश्चात चोलों ने पल्लवों की इस परंपरा को न केवल कायम रखा अपितु दसवीं से

बारहवीं सदी तक प्रायद्वीपीय भारत में इस शैली के मंदिरों का व्यापक पैमाने पर निर्माण करवाया।

द्रविड़ शैली के मंदिरों की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं - तल विन्यास में इस शैली के मंदिरों में एक विशाल प्रांगण, जो कि प्राकार से घिरा होता था, प्राप्त होता है। प्रांगण के अंदर पीछे की ओर मध्य बिंदु में मुख्य मंदिर बनाए जाते हैं। मंदिर में प्रवेश द्वार की ओर अर्धमंडप, अंतराल व गर्भगृह अनिवार्य रूप से प्राप्त होते हैं। प्रदक्षिणापथ के कारण तल विन्यास वाले मंदिर को सान्धार एवं निरंधार दो वर्गों में बांटा जा सकता है। सान्धार प्रकार के मंदिरों के गर्भगृह में दो दीवारें होती है, जबकि इसके विपरीत निरंधार मंदिर के गर्भगृह में एक ही दीवार होती है। प्राय: सभी द्रविड़ मंदिरों में अर्धमंडप के सामने स्तंभों पर आधारित एक विशाल गूढ़ मंडप प्राप्त होता है, जो वस्तुत: दीवार से घिरा हुआ एक बड़ा सभामंडप है।

मंदिर स्थापत्य की दृष्टि से गुप्तकाल भारतीय कला के इतिहास में महत्त्वपूर्ण काल खंड माना जाता है। गुप्त राजवंश के कालखंड में उनके साम्राज्य की सीमाओं में जिस कला का विकास हुआ उसे गुप्तकला कहा जाता है, किंतु कलाविदों ने गुप्त काल की बड़ी लचीली परिभाषा दी है तथा गुप्तों की समकालीनता में उनके साम्राज्य की सीमाओं के बाहर की कलाकृतियों को भी गुप्तकाल की संज्ञा दी है।

द्रविड़ शैली के मंदिरों का एकाश्मक व संरचनात्मक दोनों प्रकार के मिलते हैं। संरचनात्मक मंदिरों में प्रथमत: पत्थरों का प्रयोग किया गया है, किंतु कालांतर में जब बहुत से मंदिर बनाए जाने लगे तब विमान के ऊपर शीर्ष वाला भाग और कहीं कहीं पर आकार में भी ईंटों का प्रयोग दिखाई पड़ता है।

भारत मे इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय स्तर भी मंदिर निर्माण की कई छोटी-छोटी शैलियाँ विकसित थी जो मूलत: उपर्युक्त शैलियों का ही हिस्सा थी। भारत अपनी स्थापत्यकला के लिए सदैव समूचे विश्व में प्रसिद्ध रहा है तथा मंदिर निर्माण कला उसका वैशिष्ट्य रहा है। ❑

पुरुषार्थ चतुष्टय के प्रतीक खजुराहो के मंदिर

संजय कुमार राऊत
उच्च श्रेणी शिक्षक
शासकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय
बुरहानपुर, मध्य प्रदेश

यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहर में शामिल किए गए खजुराहो के मंदिर, मध्य प्रदेश के छतरपुर जिले में स्थित है। खजुराहो को प्राचीन काल में खजूर पूरा या खजूर वाहिका के नाम से जाना जाता था। यह प्राकृतिक रमणीय स्थान विश्व में मुड़े हुए पत्थरों से निर्मित मंदिरों के लिए प्रसिद्ध है। यह देश का मध्यकालीन सर्वश्रेष्ठ स्मारक है।

यह मंदिर समूह चंदेल वंश द्वारा ईस्वी 950 से 1050 के बीच निर्मित भारतीय कलाओं के नमूनों में से एक है। मूल रूप से 85 मंदिरों का समूह अब केवल 20 मंदिरों में शेष रह गया है। यूनेस्को द्वारा विश्व धरोहरों में सम्मिलित इन मंदिरों का अवलोकन करने सारे विश्व से लाखों पर्यटक खजुराहो आकर इन अप्रतिम धरोहरों को मन, हृदय और मस्तिक मे संजोए अभीभूत होकर जाते हैं। इन मंदिर समूह को तीन क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। पश्चिमी, पूर्वी और दक्षिणी मंदिर समूह, पश्चिमी समूह में अधिकांश मंदिर है। पूर्वी ने नक्काशी द्वार जैन मंदिर है, जबकि दक्षिणी समूह में केवल कुछ ही मंदिर है। इन मंदिरों में आठ मंदिर विष्णु जी को, छः मंदिर शिव जी को, एक मंदिर गणेश जी और सूर्य को जबकि तीन मंदिर जैन तीर्थंकरों को समर्पित है। कंदारिया महादेव मंदिर इन मंदिरों में सबसे बड़ा है। इन मंदिरों की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि गर्भ गृह में तो देवी देवताओं की मूर्तियाँ स्थापित है। लेकिन मंदिरों की दीवारों पर कला और संस्कृति को शिल्पियों ने विभिन्न काम क्रीड़ाओं को बेहद खूबसूरती से उभारा है। यह मंदिर एक सभ्य संदर्भ जीवंत सांस्कृतिक संपत्ति, समय और स्थान के अंतिम बिंदु की तरह है, जो मानव संरचनाओं और संवेदनाओं को संयुक्त करते हुए सामाजिक संरचनाओं की भरपाई करते हैं। यह पत्थरों से बना एक ऐसा कैनवास है जो अपने शुद्धतम रूप में जीवन का चित्रण प्रस्तुत करता है।

इतिहास

इन अप्रतिम सौंदर्य वाले मंदिरों का इतिहास लगभग 1200 वर्ष पुराना है। 950 से 1050 ईसवी में निर्मित यह मंदिर उनके उत्तराधिकारियों में सुंग, काकारक, गुक, पुष्यभूति, मौर्य, गुर्जर, प्रतिहार राजवंश और मुख्यतः चंदेल राजवंश शामिल है। विशेष रूप से गुप्त काल के दौरान यहाँ पर वास्तुकला और कला का विकास शुरू हुआ था। खजुराहो चंदेल साम्राज्य की राजधानी थी। चंदेल वंश में खजुराहो के संस्थापक चंद्र बर्मन मध्यकाल में बुंदेलखंड के धनगर राजा थे। वे अपने आप को चंद्रवंशी मानते थे। मध्य काल के विश्व प्रसिद्ध कवि चंद्रवरदाई ने पृथ्वीराज रासो के महोबा खंड में चंदेलों की उत्पत्ति का वर्णन किया है। चंदेलों द्वारा निर्मित स्मारक अपने स्थापत्यकला और मूर्तिकला के लिए प्रसिद्ध थे। चंदेलो को ललित कला, संगीत नृत्य की विभिन्न शैलियों मे बहुत रुचि थी। इन मंदिरों की दीवारों पर संगीत, नृत्य और विभिन्न दृश्यों में प्रदर्शित करने वाली मूर्तियों से स्पष्ट है। खजुराहो के मंदिरों में कामुक भाव बहुत सामान्य हैं। चौड़े कुल्हो, भारी स्तनों और लालसा भरी आँखों वाली स्वर्गीय अप्सराओं की मूर्तियाँ आमतौर पर कंदारिया महादेव और विश्वनाथ मंदिर की दीवारों पर पाई जाती हैं। ऐसी मान्यता

है कि यह मूर्तियाँ स्त्री सौंदर्य, प्रजनन क्षमता की अवधारणाओं को दर्शाती हैं। मंदिरों की दीवारों पर दर्शाए गए अन्य दृश्य मानव चक्र का भाग हैं, जो यह दर्शाते हैं कि यौन, प्रसव और काम मानव जीवन में अनिवार्य पहलू है। इन मंदिरों में पाँच अलग-अलग प्रकार की मूर्तियों के वर्ग है।

1. पंथ संबंधी मूर्तियाँ
2. परिवार,पार्श्व, आवरण देवता
3. अप्सराएँ और सुरसुंदरिया
4. विविध विषयों की गैर धार्मिक मूर्तियाँ नर्तक, संगीतकार, शिष्य आदि।
5. पौराणिक जीव (व्याल, शार्दुल और अन्य जानवर)

इन मंदिरों के इतिहास के साथ-साथ कई कहानियाँ भी जुड़ी हैं। एक अवधारणा के अनुसार इन मंदिरों का निर्माण शिव शक्ति संप्रदाय के प्रसार का भाग माना जा सकता है। दूसरी धारणा यह है कि यह मंदिर देवदासियों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जो कभी मंदिरों की गतिविधियों का केंद्र हुआ करती थी। खजुराहो के मंदिरों में मगध, मालवा और राजपूताना से सबसे सुंदर महिलाओं को देवदासियों के रूप में प्रशिक्षण के लिए लाया जाता था। लोगों का कहना है कि सुरसुंदरियों को जो मंदिरों की आंतरिक और बाहरी दीवारों पर बनी है उनको वास्तविक जीवन में लाया गया था और देवी देवताओं की मूर्तियों के साथ स्थापित किया गया था। एक अन्य अवधारणा के अनुसार यह मूर्तियाँ एक सामान्य जीवन चक्र प्रदर्शित करती हैं। आज इन मंदिरों का वर्णन करने वाला कोई प्रामाणिक लिखित ग्रंथ नहीं है। इसलिए यह कहना कठिन है कि कौन सी अवधारणा सही है। इन मूर्तियों के निर्माण के पीछे के उद्देश्य के बावजूद हम यह सुनिश्चित रूप से जानते हैं कि हमें दुनिया के सबसे अधिक अलंकृत जटिल सुंदर मूर्तियों का समूह मानव सभ्यता को भेंट के रूप में प्राप्त हुआ है। जो आज भी विद्यमान है। खजुराहो के मंदिरों की वास्तुकला बहुत ही जटिल है इन मंदिरों के प्रमुख घटक है।

काम ना तो रहस्य पूर्ण है और ना ही पशुवृति, काम न तो पाप से जुड़ा है ना तो पुण्य से, यह एक शारीरिक, मानवीय और सामाजिक सामान्य स्वाभाविक कृत्य हैं। कामसूख एक स्वाभाविक प्रकृति है। लेकिन मनुष्य और समाज ने उसे आस्वभाविक बना दिया है। खजुराहो के मंदिरों के बारे में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि काम कला के आसनों मे दर्शाए गए मूर्तियों में स्त्री पुरुषों के चेहरों पर एक अलौकिक और दैविक आनंद की आभा झलकती है, इसमें जरा भी अश्लीलता या भौंडापन का आभास नहीं होता, यह मंदिर और इनका मूर्ति शिल्प भारतीय स्थापत्य कला और कला का अमूल्य धरोहर है।

1. एक संकीर्ण पूर्व कक्ष अथवा अंतराल सहित गर्भ गृह
2. महा मंडप एक बड़ा सभागृह
3. अर्ध मंडप और मंडप
4. प्रदक्षिणा पथ एक परिक्रमा पथ

खजुराहो के मंदिरों को तीन समूह में विभाजित किया जाता है।

1. पश्चिमी समूह

इनमें सात मंदिर शामिल है -

1. चौसठ योगिनी मंदिर

यह खजुराहो के मंदिर समूह में ग्रेनाइट से बना एकमात्र मंदिर है। यह मंदिर एक विशाल चबूतरे पर खड़ा है। और इसमें 104 म 60 फीट का प्रांगण है। यह मंदिर माता काली देवी एवं चौंसठ योगीनियाँ जो देवी मां की सेविकाएँ थी, को समर्पित है।

2. कंदारिया महादेव मंदिर

यह 10 वीं शताब्दी ईस्वी का मंदिर सभी मंदिरों में सबसे बड़ा है। यह 109 ग 60 फीट का विशाल मंदिर है। कंदरिया महादेव मंदिर की दीवारों पर 900 मूर्तियाँ बनी हुई हैं। मूर्तियों की ऊँचाई ढाई फीट से तीन फीट तक है। इस मंदिर के गर्भगृह में भगवान शिव का प्रतीक एक संगमरमर का शिवलिंग है।

3. माता जगदंबा मंदिर

माता जगदंबा को समर्पित यह विशाल मंदिर 77 म 50 फीट का है। गर्भ गृह के प्रवेश द्वार पर भगवान विष्णु की प्रतिमा है तथा दाई और बाई ओर भगवान शिव और भगवान ब्रह्मा की भी प्रतिमाएँ हैं। गर्भ गृह

के अंदर कमल के फूल को पकड़े चतुर्भुज देवी की एक बड़ी मूर्ति है। मंदिर में देवी लक्ष्मी की एक अन्य प्रतिमा भी है और भगवान शिव की आठ भुजाओं और तीन सरों युक्त एक प्रतिमा निचले आले में भी है।

4. चित्रगुप्त या भरत जी का मंदिर

इस मंदिर की लंबाई 75 म 52 फीट है। गर्भगृह में सूर्य देवता की प्रतिमा विराजित हैं, जिसमें सूर्य देवता ऊँचे जूते पहने सात घोड़ों वाले रथ को चलाते हुए विराजित हैं। एक अन्य मूर्ति में भगवान विष्णु की 11 मुख वाली प्रतिमा है, इस प्रतिमा का केंद्रीय मुख स्वयं भगवान विष्णु का है तथा शेष 10 मुख दस अवतारों के प्रतीक हैं।

5. विश्वनाथ मंदिर

भगवान शिव को समर्पित इस मंदिर में गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर एक विशाल नंदी पर सवार भगवान शिव की विशाल प्रतिमा है। तथा दाई और बाई ओर हंस पर भगवान ब्रह्मा तथा गरुड़ पर भगवान विष्णु की प्रतिमाएँ भी हैं। मंदिर के अंदर दो शिलालेख हैं जिस पर विक्रम संवत 1059 अंकित हैं, इस पर राजा नानुका से लेकर राजा धुंग तक चंदेल राजाओं की वंशावली का वर्णन है।

6. लक्ष्मण मंदिर

यह मंदिर चतुर्भुज मंदिर के रूप में भी जाना जाता है। यह 99 ग 46 फिट का मंदिर है। प्रवेश द्वार पर भगवान ब्रह्मा और भगवान शिव की प्रतिमाओं के साथ देवी लक्ष्मी की प्रतिमा भी है। इस मंदिर परिसर में लालगुआन महादेव मंदिर, नंदी मंदिर, पार्वती मंदिर और वराह मंदिर भी शामिल हैं।

पूर्व समूह के मंदिर

1. ब्रह्मा मंदिर

खजुराहो के सागर झील के तट पर स्थित इस मंदिर के गर्भगृह में चार मुख वाली प्रतिमा संभवत भगवान शिव की हो सकती है परंतु स्थानीय उपासकों द्वारा इन्हें गलती से भगवान ब्रह्मा की प्रतिमा समझा गया है।

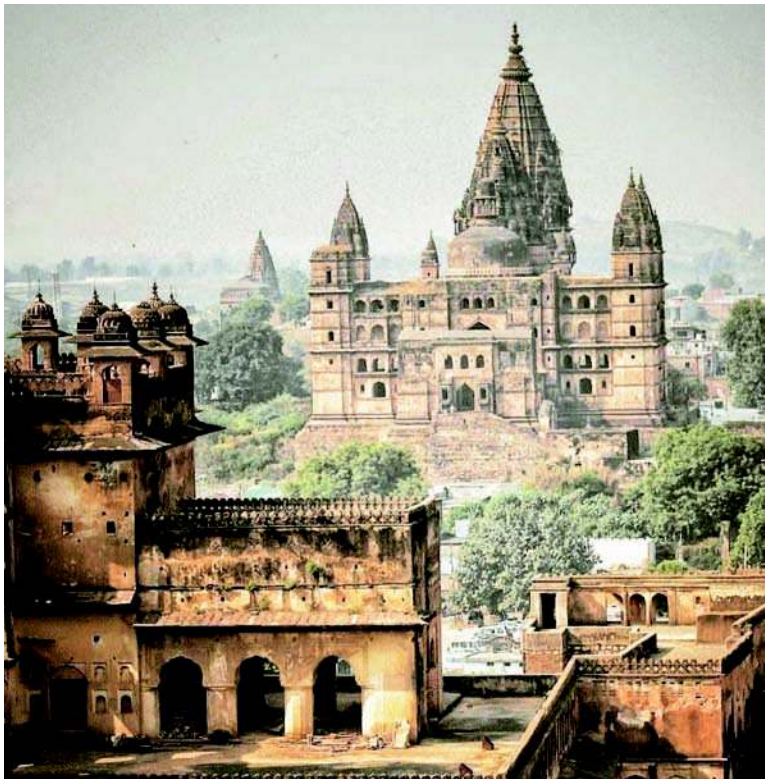

2. वामन मंदिर

यह मंदिर 63 ग 46 फीट का है, गर्भ गृह के अंदर 5 फीट ऊँची भगवान विष्णु की वामन अवतार की सुंदर प्रतिमा है। इसमें भगवान विष्णु के अन्य अवतार भी हैं। निचली पंक्ति में भगवान वराह, भगवान नरसिंह और भगवान वामन की आकृतियाँ हैं।

3. घंटाई मंदिर

इस मंदिर का नाम मंदिर में द्वार मंडप के स्तंभों को सुशोभित करती जंजीरों पर लटकी घंटियों के कारण पड़ा है। इसमें जैन तीर्थंकरों की 11 नग्न प्रतिमाएँ और दो यक्षिणियों की प्रतिमाएँ हैं। प्रवेश द्वार पर गरुड पर सवार आठ भुजा वाली जैन देवी की आकृति है। मंदिर छत के किनारों पर कई वाद्य यंत्र पर नाचते गाते संगीतकारों के समूह दर्शाए हैं। सरदल के ऊपर हाथी, बैल, शेर, लक्ष्मी, माला और ऐसी अन्य शुभ वस्तुओं को दर्शाया गया है जिन्हें जैन धर्म संस्थापक भगवान महावीर की माँ ने उनके जन्म के पहले अपने सपनों में देखा था।

4. पार्श्वनाथ मंदिर

यह जैन मंदिरों में सबसे बड़ा मंदिर है। यह मंदिर 69 ग 35 फीट का है। यह मंदिर जैन धर्म के 22वें जैन तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ जी का मंदिर माना जाता है।

दक्षिणी समूह के मंदिर

1. दुलादेव मंदिर

यह मंदिर खजुराहो के मुख्य मंदिरों से लगभग डेढ़ मील दूर पर स्थित है। 70 ग 41 फीट के इस मंदिर मे 5 कक्ष है। इसमें चतुर्भुजगण और एक शंख से युक्त नक्काशी का अनूठा समूह है।

2. जटकारी या चतुर्भुज मंदिर

यह मंदिर जटकारी गाँव के पास स्थित है और भगवान विष्णु को समर्पित है उनकी 9 फीट ऊँची प्रतिमा विराजित है प्रतिमा का दाहिना हाथ अभय मुद्रा में है और उनकी हथेली पर गोलाकार निशान

है। जबकि बाएँ हाथ में एक कमल का डंठल और डोरी से बनी हुई एक पवित्र पुस्तक है। इसके अलावा सुरसुंदरियों को कामुक रूप से प्रतिरूप शरीरों तथा वस्त्रों और आभूषणों का खूबसूरती से चित्रण किया गया है। इस तरह से खजुराहो के मंदिर प्रारंभिक काल में हमारे देश की कलाओं में संभवत सबसे अधिक मानवतावादी निरूपण है।

इन सुंदर मंदिरों कि वास्तु कला, शिल्प कला और सौंदर्य कला के अवलोकन के पश्चात प्रत्येक तीर्थयात्री और मानव के मन में यह विचार आता है कि मंदिरों के गर्भगृह में एवं आंतरिक वास्तु और शिल्प तो देवी देवताओं की मूर्तियों के रूप मे आध्यात्मिक पहलू का वर्णन करते हैं, लेकिन वे मंदिरों की बाह्य दीवारों पर कामुक, नग्न और कामोत्तेजक मूर्तियों के निर्माण के रहस्य को जानने का प्रयास भी करते हैं। इसमें विद्वानों और इतिहासकारों के कई मत है जो संक्षिप्त में निम्नानुसार हैं –

1. उस काल में बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण अध्यात्म, त्याग और सन्यास के प्रति युवाओं में रुचि इस प्रकार बढ़ गई थी कि वह वैराग्य की ओर अग्रसर होने लगे थे और अपने परिवारजनों और बच्चों को त्याग कर जंगल की ओर प्रस्थान करने लगे थे, अविवाहित युवक भी वानप्रस्थ और सन्यास की ओर आकर्षित होने लगे थे। राज्य में स्त्री पुरुष अनुपात असंतुलित हो गया था, इसलिए तत्कालीन शासकों ने इन मंदिरों का निर्माण करवाया होगा। इनका उद्देश्य अश्लीलता फैलाना बिल्कुल नहीं था, बल्कि समाज में गृहस्थ जीवन को प्रतिस्थापित करना था।

2. उन दिनों युद्धों का भी दौर था अधिकांश युवा सैनिक के रूप में युद्ध में शहीद होते थे और समाज में पुरुषों की संख्या न्यून हो गई थी, बचे हुए लोगों में काम शक्ति को बढ़ाने के लिए इन मंदिरों का संभवत निर्माण उस समय के राजाओं ने करवाया होगा।

3. यह भी मान्यता है कि चंदेल राजाओं के काल में क्षेत्र में तांत्रिक समुदाय की वाममार्गी शाखा का वर्चस्व था जो योग तथा भोग दोनों को मोक्ष का साधन मानते थे। इनके शास्त्रों के अनुसार संभोग भी मोक्ष प्राप्ति करने का एक साधन हो सकता है।

बहरहाल स्थापत्य की इस विधा में मूल कारण कोई भी रहा हो, यह तो निश्चित है कि उस काल में संस्कृति में ऐसी कला का भी एक महत्त्वपूर्ण स्थान था।

धर्मार्थकाममोक्षाख्यां य
इच्छेच्छेय आत्मनः
एकं व्हेव हरेस्तत्र
कारणम पादसेवनम्

अर्थात् – जो व्यक्ति धर्म अर्थ काम तथा मोक्ष इन चार पुरुषार्थों की कामना करता है उसे चाहिए कि पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान की भक्ति में अपने आप को लगाए क्योंकि उनके चरण कमलों की पूजा से इन सब की पूर्ति होती है।

कभी आपने खजुराहो की मूर्तियाँ देखी हो तो आपको दो अद्‌भुत बातें अनुभव होगी पहली बात तो यह है कि नग्न, मैथुनरत प्रतिमाओं को देखकर आपको ऐसा नहीं लगेगा कि उनमें जरा भी कुछ गंदा है या कुछ अश्लील है, दूसरी ओर आपको एक अलग तरह की शांति और पवित्रता का अनुभव होगा जो बड़ी हैरानी की बात है। कामसूत्र की तरह खजुराहो के मंदिर विश्व प्रसिद्ध है। क्योंकि इनकी बाहरी दीवारों पर लगे मनोरम मोहक मूर्ति शिल्प काम क्रिया के विभिन्न आसनों को दर्शाते हैं। कामसूत्र में एक वैज्ञानिक दृष्टि से काम भावना और काम कला का अध्ययन और विश्लेषण किया है, तो उसकी मूल भावनाओं को खजुराहो में मंदिरों की बाहरी दीवारों पर उकेरकर चित्रित किया गया है।

काम ना तो रहस्य पूर्ण है और ना ही पशुवृति, काम न तो पाप से जुड़ा है ना तो पुण्य से, यह एक शारीरिक, मानवीय और सामाजिक सामान्य स्वाभाविक कृत्य हैं। कामसूख एक स्वाभाविक प्रकृति है। लेकिन मनुष्य और समाज ने उसे आस्वभाविक बना दिया है। खजुराहो के मंदिरों के बारे में एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि काम कला के आसनों मे दर्शाए गए मूर्तियों में स्त्री पुरुषों के चेहरों पर एक अलौकिक और दैविक आनंद की आभा झलकती है, इसमें जरा भी अश्लीलता या भौंडापन का आभास नहीं होता, यह मंदिर और इनका मूर्ति शिल्प भारतीय स्थापत्य कला और कला की अमूल्य धरोहर है। इन मंदिरों की भव्यता सुंदरता और प्राचीनता को देखकर ही इन्हें विश्व धरोहर में शामिल किया गया है। ❑

भारतीय मंदिरों का सामाजिक शैक्षणिक महत्त्व

डॉ. संज्ञा त्रिपाठी
सहायक प्राध्यापक,
समाज कार्य विभाग,
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय,
छत्तीसगढ़

भारतीय मंदिरों में मूर्तिकला उस समय के सामाजिक जीवन को दर्शाती है क्योंकि इसका उपयोग क्षेत्र की राजनीति, संस्कृति, इतिहास, धर्म, अनुष्ठानों और स्मारकों, अन्य चीजों को चित्रित करने के लिए कई संदर्भों में किया जाता है। मूर्तिकला का उपयोग केवल सजावट के लिए नहीं किया जाता है। समय और स्थान के साथ मूर्तिकला बदलती है। कांस्य मूर्तियाँ, बड़ी मूर्तियाँ, और जटिल पत्थर की नक्काशी सभी प्राचीन संस्कृतियों के सटीक प्रतिनिधित्व के रूप में काम करती हैं।

लगभग 10 हजार वर्ष पूर्व हिन्दू मंदिर बनाया गया था। उस युग में वैदिक ऋषि जंगलों में ध्यान, प्रार्थना और यज्ञ करते थे। मंदिरों का लोकजीवन में महत्त्व कम था। जितना आत्मचिंतन, मनन और शास्त्रार्थ का था। फिर भी लोग शिव और पार्वती के अलावा नगर, गाँव और स्थानीय देवताओं की प्रार्थना करते थे।

मंदिरों का भारतीय समाज में महत्त्व केवल एक देवस्थान या पूजा-पाठ के स्थान के रूप में नहीं था वे ज्ञान, विज्ञान, ज्योतिष, खगोलशास्त्र और आयुर्वेद की शिक्षा भी देते थे और एक तरह का बैंक भी होते थे। मंदिरों का लोगों के जीवन में महत्त्व था, इसलिए उनमें भी विविधता थी। इसी विविधता की वजह से बाद में जो भी देवस्थान थे, वे भी शिक्षा के केंद्र बन गए।

कलाकृति सामान्य जीवन की घटनाओं का प्रतिनिधित्व करती है। लगभग सभी मूर्तियाँ और पेंटिंग आसपास की गतिविधियों से प्रभावित हैं। मूर्तियों सहित सभी कलात्मक कृतियों का अंतिम लक्ष्य एक संदेश प्रसारित करना है। कलाकार अवधारणाओं, धार्मिक अवधारणाओं, ऐतिहासिक व्यक्तित्वों और यहाँ तक कि महाकाव्य मिथकों को संप्रेषित करने के लिए मूर्तिकला का उपयोग करते हैं। सबसे आम संदेशों में से एक यह है कि एक मूर्ति यह बताती है कि धर्म के विभिन्न रूपों के माध्यम से सभ्यता कैसे विकसित हुई है। बुद्ध को प्रतीकात्मक रूप से बौद्ध धर्म के प्रारंभिक दौर में पैरों के निशान, स्तूप, कमल सिंहासन और चक्रों द्वारा दर्शाया गया है। जातक कथाओं का मूर्तिकला पर उतना ही प्रभाव था। बौद्ध कला में, चक्र का आकार धर्मचक्र के चित्रण के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। बुद्ध की शिक्षाओं को पहिये द्वारा दर्शाया गया है। सर्कल के केंद्र में तीन छल्ले बुद्ध (शिक्षक), धर्म (बुद्ध की शिक्षा), और संघ (समुदाय), बौद्ध धर्म के तीन रत्नों के लिए खड़े हैं। धर्म की पूर्णता को धर्मचक्र द्वारा दर्शाया गया है। मूर्तिकला या तो सीधी आराधना या श्रद्धा व्यक्त करती है या, अवसर पर, वास्तविक जीवन की घटनाओं की ऐतिहासिकता को दर्शाती है।

अतीत में, संत मंदिरों के अंदर गुरुकुल आश्रम चलाते थे जहाँ युवा लोग

औपचारिक शिक्षा प्राप्त करते थे। इन स्थानों में 'व्यायामशाला, मार्शल आर्ट और तीरंदाजी भी सबसे पहले शुरू की गई थी। इसे कलारी पयट्टू जैसी दक्षिण भारतीय परंपराओं में देखा जा सकता है, जिसके रचयिता भगवान परशुराम माने जाते हैं। उत्तर भारत में कुश्ती की चार अलग-अलग शैलियाँ हैं, जिनमें से प्रत्येक का नाम एक हिंदू देवता या पौराणिक नायक के नाम पर रखा गया है। जरासंधी अंगों और जोड़ों को तोड़ने पर आधारित है, हनुमंती तकनीक श्रेष्ठता पर जोर देती है, जम्बुवंती प्रतिद्वंद्वी को प्रस्तुत करने के लिए मजबूर करने के लिए उसे पिन करने को संदर्भित करती है, और भीमसेनी दृष्टिकोण सिर्फ शक्ति पर जोर देता है।

मंदिरों के अंदर बने अस्पतालों में, हम धन्वंतरि और चरक जैसे आयुर्वेद के आचार्यों द्वारा प्रेरित चिकित्सा ज्ञान के प्रसार को भी देख सकते हैं। अतीत में, मंदिर अस्पतालों के रूप में भी काम करते थे, जहाँ बीमारों का इलाज किया जाता था। मंदिर की वास्तुकला और डिजाइन नागर और द्रविड़ शैलियों में विकसित हुए हैं। जंगलों के बीच मंदिरों का भी निर्माण किया गया है और पहाड़ों को काटकर चट्टानों पर खड़ा कर दिया गया है। महाबलीपुरम में चट्टान को काटकर एक मंदिर का निर्माण किया गया था। दूसरी ओर, तंजौर का राजराजेश्वर मंदिर दक्षिण भारतीय स्थापत्य कला का एक शानदार उदाहरण है। इसके अलावा, मंदिरों ने लंबे समय से सांप्रदायिक रसोई, विवाह स्थलों और त्योहारों के लिए सामाजिक और आर्थिक सभा के केंद्र के रूप में काम किया है।

भारत में हिंदुओं ने अपने धर्म का प्रचार करने के लिए मंदिरों का निर्माण शुरू किया, लेकिन हर एक में नियोजित वास्तुकला और कलाकृति भविष्य को ध्यान में रखकर बनाई गई थी। ताकि भविष्य में समाज को इसका लाभ मिल सके। मंदिरों को विशिष्ट स्थानों पर बनाया गया था, और उनसे जुड़े त्यौहार भी कभी-कभी आयोजित किए जाते थे। त्यौहारों, सेमिनारों, मेलों और अन्य कार्यक्रमों की भी योजना बनाई गई थी। यदि हम इन घटनाओं के आर्थिक पक्ष की जाँच करें तो हमें पता चलेगा कि व्यापार और कृषि हमेशा से लोगों की आय का मुख्य स्रोत रहे हैं। जिसके अनुसार कोई व्यक्ति रहता था। वह अपनी वस्तुओं को खरीदने और बेचने के लिए धन का व्यापार या उपयोग करता था। ताकि समाज आगे बढ़ सके, उसने लाभ के रूप में प्राप्त धन का उपयोग अपनी जरूरतों और राज्य करों दोनों के भुगतान के लिए किया। यह प्रदर्शित करता है कि मंदिर का विचार हमारी संस्कृति में कितनी गहराई तक समाया हुआ था और कैसे इसने राजा और उसकी प्रजा के बीच संबंधों के लिए एक स्थिर नींव के रूप में कार्य किया।

कलाकार अवधारणाओं, धार्मिक अवधारणाओं, ऐतिहासिक व्यक्तित्वों और यहाँ तक कि महाकाव्य मिथकों को संप्रेषित करने के लिए मूर्तिकला का उपयोग करते हैं। सबसे आम संदेशों में से एक यह है कि एक मूर्ति यह बताती है कि धर्म के विभिन्न रूपों के माध्यम से सभ्यता कैसे विकसित हुई है। बुद्ध को प्रतीकात्मक रूप से बौद्ध धर्म के प्रारंभिक दौर में पैरों के निशान, स्तूप, कमल सिंहासन और चक्रों द्वारा दर्शाया गया है। जातक कथाओं का मूर्तिकला पर उतना ही प्रभाव था। बौद्ध कला में, चक्र का आकार धर्मचक्र के चित्रण के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अर्थव्यवस्था और समाज को मजबूत करने और समृद्धि के लिए अनुकूल वातावरण बनाने के लिए, राजा ने धार्मिक उद्देश्यों के लिए जनता से एकत्र किए गए करों के एक हिस्से का उपयोग किया। ऐसे में प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक मंदिर के आर्थिक प्रभावों की जाँच करना उचित प्रतीत होगा। यह ध्यान रखना महत्त्वपूर्ण है कि मंदिर वर्तमान में निवेश और राजस्व का एक महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं। क्या हर वर्ग को कुछ मिलता है?

ब्रिटिश प्रशासन के तहत, संगीत और नृत्य का आध्यात्मिक पक्ष कम हो गया था जबकि इसका भौतिकवाद और व्यावसायीकरण बढ़ गया था। मंदिरों में नृत्य और संगीत का संस्थागत विकास समाप्त हो गया। मंदिरों में चल रही गुरुकुल प्रणाली भी इसी तरह समाप्त हो गई। मूर्तिकला पर प्रतिबंध के कारण, जो कलाकार पहले राजकीय संरक्षण में फले-फूले थे, उन्होंने खुद को सहारा देने के लिए अपने काम पर भरोसा करना शुरू कर दिया। आजकल पहाड़ों या चट्टानों को तोड़कर मंदिर बनाना एक दुर्लभ घटना है। नई शहरी शैली, जिसने उपलब्ध स्थान के आधार पर मंदिर निर्माण को प्राथमिकता दी, ने नागरा और द्रविड़ स्थापत्य को भी हटा दिया।

हम इससे देख सकते हैं कि सांस्कृतिक मूल्यों के निर्माण पर मंदिरों का प्रभाव कम हो गया था, जिससे वे केवल पूजा के स्थानों तक सीमित हो गए थे। बड़े मंदिरों में आजकल कम्युनिटी भोजनशाला और अस्पताल बिल्कुल सीमित स्तर पर चल रहे हैं। मंदिर अभी भी छुट्टियों और त्यौहारों के दौरान सामाजिक मेलजोल और वाणिज्य के स्थान के रूप में तर्कसंगत रूप से कार्य करता है। हालांकि, मंदिरों का सामाजिक, शैक्षणिक महत्त्व कम हो गया है। इसके पीछे धार्मिक कट्टरता, समायोजन की कमी तथा गिरते हुए आत्मीकरण की भावना की प्रधानता अधिक है। ❑

'भारत के मंदिरों का ध्वंस और पुनर्निर्माण'

प्रो. प्रवीन कुमार मिश्र
संकायाध्यक्ष,
सामाजिक विज्ञान संकाय,
विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग,
गुरु घासीदास विश्वविद्यालय,
बिलासपुर (छ.ग.)

भारत में अरबों के आक्रमण से ही मंदिरों के ध्वस्तिकरण का प्रारम्भ देखने को मिलता है। बी.एन. लुणिया की पुस्तक 'पूर्व मध्यकालीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास,(पृष्ठ संख्या-104) में स्पष्ट उल्लेख है, कि 712ई. में मुहम्मद बिन कासिम ने सिंध के मंदिरों को ध्वंस किया था, एवं उसी पुस्तक (पृष्ठ संख्या- 96 से105) में उल्लेख है, कि ''महमूद गजनवी (1000 ई.-1026 ई.) के द्वारा भटिंडा के मंदिर का ध्वंस कर उसे मस्जिद में तब्दील कर दिया एवं 1014 ई. में थानेश्वर के चक्रवाक स्वामी मंदिर को तोड़ दिया तथा लूट-पाट की, मंदिरों की धन संपदा को गजनी भिजवा दिया, और प्रतिमा को तुड़वाकर चौराहों पर फिकवा दिया, ताकि लोगों के पैरों तले अपमानित होना पड़े। 1018 ई. में वृन्दावन और मथुरा के मंदिरों में महमूद गजनवी ने आग लगवा दिया, वहाँ से अपार स्वर्ण मूर्तियाँ लूटकर गजनी ले गया था। 1020 ई. में पंजाब के मंदिरों को ध्वंस किया एवं 1025 ई. में सौराष्ट्र के प्रसिद्ध सोमनाथ मंदिर को विध्वंस कर दिया, इस मंदिर का वैभव इस बात से लगा सकते हैं, कि शिव प्रतिमा मंदिर मे निराधार हवा मे स्थापित थी।''

बी.एन. लुणिया की पुस्तक 'पूर्व मध्यकालीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास', (पृष्ठ संख्या-155) में स्पष्ट उल्लेख है, कि ''मुहम्मद गोरी ने इंद्रप्रस्थ एवं बनारस के हजारों मंदिरों को ध्वंस कर लूट-पाट किया तथा 1400 ऊटों पर लूट का धन गजनी ले गया था।'' शंकर शरण की पुस्तक 'भारत में मार्क्सवादी इतिहास-लेखन', (पृष्ठ-199) में स्पष्ट उल्लेख है, कि ''बाबर ने अयोध्या के मंदिर को तोड़कर मस्जिद का निर्माण करवाया था'', (बाबरी मस्जिद का मामला विवादित है, इस मामले मे न्यायालयके निर्णय सर्वमान्य है)।

ईश्वरी प्रसाद ने अपनी पुस्तक 'मध्यकालीन भारत का संक्षिप्त इतिहास', (पृष्ठ संख्या 462-467) में स्पष्ट उल्लेख किया है, कि ''औरंगजेब ने गुजरात के चिंतामणि के मंदिर में गोहत्या कराकर अपवित्र किया, और मंदिर तोड़कर मस्जिद मे तब्दील कर दिया तथा सोमनाथ मंदिर के ज्योतिर्लिंग को मंदिर से निकालकर उस मंदिर को मस्जिद में तबदील करा दिया, एवं बनारस के विश्वनाथ मंदिर को ध्वंस कर ज्ञानवापी मस्जिद का निर्माण कराया था। इसी तरह उसने मथुरा के केशवराय के मंदिर को तोड़ दिया था। औरंगजेब की आज्ञा से उदयपुर में 123 मंदिरों, चितौड़ में 63 मंदिरों एवं अजमेर में 66 मंदिरों को ध्वंस

करवाया था।'' अनगिनत स्थानीय एवं छोटे मंदिरों को तोड़ा गया है, जिसका कोई प्रमाण नहीं है कि दावा किया जा सके, जबकि अधिकांश मंदिरों को मस्जिद में तब्दील कर दिया गया है। मंदिरों को लूटने के साथ-साथ मूर्तियों के अवशेषों को मस्जिदों के राह पर बिछाकर हिन्दू आस्था को जलील करने का प्रयास किया गया। महमूद गजनवी स्वयं को मूर्ति भंजक कहलवाना पसंद करता था।

भारत में मंदिरों के ध्वंस के कारणों को लेकर इतिहासकार एकमत नहीं है। मार्क्सवादी इतिहासकार मंदिरों को धन संपदा का केंद्र बताकर इस्लाम धर्म और मुस्लिम शासकों के धार्मिक उन्माद एवं हिंदुस्तान को 'दारुल हर्ब से दारुल इस्लाम' मे बदलने की प्रक्रिया पर पर्दा डालने का प्रयास करते है, जबकि राष्ट्रवादी इतिहासकार मंदिर तोड़ने एवं उसे मस्जिद में तब्दील करने के धार्मिक उन्माद को इस्लाम धर्म की धार्मिक असहिष्णुता एवं कट्टरता का उदाहरण बताकर हिन्दू राष्ट्र की भावना को पुनः जागृत करने का प्रयास कर रहे हैं।

विश्व के सभी हिस्सों में किसी न किसी स्वरूप में ईश्वर के प्रति आस्था देखा जा सकता है। ईश्वर के साकार, निराकार, एकेश्वरवाद, बहुदेववाद इत्यादि किसी भी स्वरूप को आधार मानकर उनके प्रति निष्ठा भाव रखने की प्रवृत्ति सभी समुदायों में देखने को मिलती है। दुनिया भर में अनेक धार्मिक विश्वास है, इन धर्मों की अपनी अलग धार्मिक मान्यताएँ होती हैं। कुछ धर्म दूसरे धर्म के प्रति धार्मिक सहिष्णुता का भाव रखते हैं, जबकि कुछ धर्म दूसरे धर्म के प्रति असहिष्णुता का भाव रखते हैं। धर्म का गठजोड़ जब राजनीति से हो जाए, तो यह धार्मिक असहिष्णुता एक दूसरे धार्मिक समुदाय के प्रति ईर्ष्या और शत्रुता को जन्म देती है। इस्लाम बहुदेववाद एवं मूर्तिपूजा का प्रबल विरोधी है। जबकि हिन्दू बहुदेववाद मे आस्था रखते हैं, सनातनी मंदिर को सर्वाधिक पवित्र स्थल मानते हैं। इन मंदिरों का निर्माण सामान्यतः देवताओं के जन्म स्थान या देवताओं के विशेष दैवी घटनाक्रम से जुड़े स्थानों पर होता है।

भारतीय मंदिरों के लूट एवं ध्वस्तीकरण तथा पुनर्निर्माण की दृष्टि से सोमनाथ मंदिर सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। बी.एन. लुणिया की पुस्तक 'पूर्व मध्यकालीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास', (पृष्ठ संख्या-103) में स्पष्ट उल्लेख किया है, कि ''प्राचीन कथाओं के अनुसार प्रथम चरण के मंदिर राजा सोम ने शंकर की आराधना हेतु सोमनाथ मंदिर का निर्माण कराया था। सोमनाथ का शिवलिंग, भारत के 12 ज्योतिर्लिंगों में श्रेष्ठ माना जाता है। प्रथम सदी में सोमनाथ शैवधर्म के पाशुपत संप्रदाय का प्रमुख केंद्र था। प्रथम चरण के मंदिर पर द्वितीय चरण के मंदिर का निर्माण सातवीं सदी में पल्लवों के शासनकाल में हुआ था, तीसरे चरण के मंदिर का निर्माण गुर्जर-प्रतिहार शासकों के शासनकाल में हुआ था।''

पुरातात्विक साक्ष्यों एवं साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर स्पष्ट हो चुका है, कि मुसलमान शासकों द्वारा हिंदू मंदिर को तोड़ने एवं उसे मस्जिद में तबदील करने में कोई हिचक नहीं होती थी, 'बल्कि दारुल हर्ब से दारुल इस्लाम में बदलने' का हर्षित प्रयास था। ऐसे में उन सभी विवादित मस्जिदों एवं स्थानों की जाँच करना सार्थक है, जो धर्म स्थल विवादित हो, ताकि हिंदू धर्म एवं संस्कृति का संरक्षण किया जा सके।

(पृष्ठ संख्या-104) में उल्लेख किया हैं, कि ''सोमनाथ मंदिर को पहली बार 1025 ई. में तोड़ने वाला शासक महमूद गजनवी था। सोमनाथ मंदिर का पहली बार पुनर्निर्माण मालवा के राजा भोजदेव परमार ने करवाया था। गुजरात के भीम सोलंकी ने तीसरे चरण के मंदिर के अवशेष पर चतुर्थ चरण के मंदिर का निर्माण करवाया था। 1179 ई. में गुजरात के शासक कुमारपाल ने पंचम चरण के मंदिर का निर्माण करवाया था। 1267 ई. में अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति अल्फखाँ ने पुनः सोमनाथ मंदिर को तोड़ दिया था, जिसका पुनर्निर्माण (1308 ई. से 1325 ई.) के दौरान राजा महिपाल देव ने करवाया था। 1375 ई. में गुजरात के सुल्तान ने ज्योतिर्लिंग को गर्भगृह से निकलवा दिया था, जिसे बाद में स्थानीय लोगों ने पुनः स्थापित किया था।'' 1413 ई. में पुनः अहमदाबाद के सुल्तान शाहअहमद ने सोमनाथ मंदिर के ज्योतिर्लिंग को नष्ट कर दिया, पुनः स्थानीय लोगों ने ज्योतिर्लिंग को स्थापित किया। 1456 ई. में गुजरात के सुल्तान बोगड़ा ने सोमनाथ मंदिर को पुनः ध्वस्त कर उसी पर एक मस्जिद का निर्माण कराया, लेकिन सुलतान बोगड़ा की शक्ति क्षीर्ण हुई, तो स्थानीय हिंदुओं ने पुनः मंदिर का पुनर्निर्माण किया। (पृष्ठ संख्या-105) में उल्लेख है, कि ''1706 ई. में मुगल सम्राट औरंगजेब ने सोमनाथ के मंदिर को मस्जिद के रूप में तब्दील कर दिया था, जिसका पुनर्निर्माण इंदौर राज्य की महारानी अहिल्याबाई होल्कर ने 1783 में करवाया था, उसके बाद सोमनाथ मंदिर का पुनर्निर्माण 11 मई 1951 में किया गया जो आज भी सुरक्षित है।''

काशी विश्वनाथ का मंदिर हजारों वर्ष प्राचीन माना जाता है, राजा हरिश्चंद्र ने 11वीं सदी में इसका पुनर्निर्माण करवाया था, 1194 में मुहम्मद गोरी ने इसे ध्वस्त

कर दिया, मुहम्मद गोरी के वापस लौटते ही स्थानीय लोगो द्वारा इसका पुनर्निर्माण किया गया, लेकिन 1447 मे जौनपुर के सुल्तान मुहम्मद शाह ने पुन:काशी विश्वनाथ मंदिर तोड़ दिया था, जिसका पुनर्निर्माण1585 ई. में टोडरमल की मदद से पंडित नारायण भट्ट ने करवाया था, उसके बाद 18 अप्रैल 1669 में औरंगजेब ने काशी विश्वनाथ मंदिर को पुन: ध्वस्त कर दिया, और उसके स्थान पर एक मस्जिद बनाने का आदेश दिया था। काशी विश्वनाथ मंदिर को 1780 ई. में महारानी अहिल्याबाई होल्कर ने पुनर्निर्माण करवाया, उसके बाद महाराजा रणजीत सिंह ने 1853 में 1000 किलोग्राम सोना दान किया, इसके उपरांत वर्ष 2022 में माननीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने मंदिर के सुंदरीकरण का कार्य करवाया, हालांकि ज्ञानवापी मस्जिद को लेकर विवाद की स्थिति है, जिस पर माननीय न्यायालय का निर्णय सर्वमान्य होगा।

अयोध्या जिले के रामकोट पहाड़ी जो पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्वीकार किया, कि यह स्थल हिंदुओं से संबंधित है, लिहाजा स्पष्ट है, कि 1527ई. में बाबरी मस्जिद, धार्मिक उन्माद के फलस्वरूप विवादित स्थान पर, बाबर का सेनापति मीरबाकी ने बनवाया था। 1853ई. में राम मंदिर पुनर्निर्माण का प्रयास निर्मोही अखाड़ा नामक एक हिंदू संगठन ने किया था, उसने अवध के नवाब वाजिद अलीशाह के शासनकाल में यह दावा किया कि बाबरी मस्जिद हिंदू मंदिर को तोड़कर बनाया गया है। कालांतर में मंदिर पुनर्निर्माण के छिटपुट प्रयास होते रहे।

मंदिर पुनर्निर्माण को लेकर 1885 ई. में महंत रघुवीर दास ने फैजाबाद की जिला न्यायालय में याचिका दायर किया था, लेकिन याचिका निरस्त हो गई। 1989 ई. में लालकृष्ण आडवाणी द्वारा राम मंदिर पुनर्निर्माण की आधारशिला रखने के उद्देश्य से हजारों किलोमीटर की यात्राऐ की गयी थी। 1992 ईङ में राम भक्तों ने एक साथ राम मंदिर निर्माण के लिए रैली निकाली जिसमें छिटपुट हिंसा हुई, और राम जन्म भूमि पर बने बाबरी मस्जिद को छतिग्रस्त कर दिये, उसके बाद राम जन्मभूमि मामले की सुनवाई निरंतर माननीय सर्वोच्च न्यायालय में होती रही, और अंतत: इस विवाद का निपटारा 9 नवंबर 2019 को पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर माननीय न्यायालय ने हिंदू पक्ष की दलीलों को सही मानते हुये विवादित भूमि को रामजन्म स्थान मानकर मंदिर बनाने कि अनुमति प्रदान कीया, इसके उपरांत भारत के प्रधानमंत्री माननीय नरेंद्र मोदी जी ने भव्य राम मंदिर निर्माण की आधारशिला रखी है, जिसे 2024 तक पूर्ण होने के आसार है, इसी प्रकार हिन्दू संगठन अन्य मंदिरों के पुनर्निर्माण के लिए निरंतर प्रयासरत हैं।

आज भी कुछ प्रमुख मंदिरों को लेकर विवाद की स्थिति है, जैसे ज्ञानवापी मस्जिद एवं कुतुब मीनार तथा मथुरा के ईदगाह मस्जिद इत्यादि को लेकर हिंदू संगठन ध्वस्त किए गए मंदिरों के पुनर्निर्माण के लिए प्रयास कर रहे हैं, क्योंकि मामला न्यायालय के संज्ञान में है, लिहाजा माननीय न्यायालय का निर्णय सर्वमान्य होगा।

निष्कर्ष के तौर पर देखा जाए तो भारत में अरब आक्रमण से लेकर मुगल काल के पतन तक किसी न किसी रूप में, भारतीय हिंदू मंदिरों, पाठशालाओं एवं पवित्र स्थलों को क्षति पहुँचाने तथा अपमानित करने एवं मंदिरों को मस्जिद में तबदील करने की प्रक्रिया, मुस्लिम शासकों के लिए सामान्यत: धार्मिक हर्ष की घटना थी।

उपर्युक्त पुरातात्विक साक्ष्यों एवं साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर स्पष्ट हो चुका है, कि मुसलमान शासकों द्वारा हिंदू मंदिर को तोड़ने एवं उसे मस्जिद में तबदील करने में कोई हिचक नहीं होती थी, 'बल्कि दारुल हर्ब से दारुल इस्लाम में बदलने' का हर्षित प्रयास था। ऐसे में उन सभी विवादित मस्जिदों एवं स्थानों की जाँच करना सार्थक है, जो धर्म स्थल विवादित हो, ताकि हिंदू धर्म एवं संस्कृति का संरक्षण किया जा सके। ❑

भारत के सांस्कृतिक विकास का आधार मन्दिर

डॉ. राजकुमार चतुर्वेदी
प्राचार्य,
राजकीय महाविद्यालय,
मांडलगढ़, जिला भीलवाड़ा
(राजस्थान)

भारत के सांस्कृतिक अधिष्ठान में ऋषि-मुनियों के साथ मंदिरों की भूमिका भी रेखांकित की जाती है। उत्तर में जम्मू-कश्मीर से लगाकर दक्षिण में तमिलनाडु तक विभिन्न मंदिरों में भारतीय संस्कृति के विकास के विविध रूप दिखाई देते हैं। सामान्यतया मंदिरों में श्री कृष्ण, श्री राम की प्रतिमा मिलती है। उत्तर से-दक्षिण भारत तक श्री शिव के लिंग स्थापित हैं। भारत की उत्तरी हिमालय पर्वतीय चोटियों पर श्री शिव एवं मां पार्वती के विभिन्न मंदिर स्थापित हैं। यह मंदिर पर्वतीय संरक्षण एवं प्रकृति रक्षा के लिये हमें प्रेरित करते हैं। हम सभी जानते हैं मंदिरों में साकार प्रतिमाओं के साथ-साथ, कहीं गाय, नंदी, कहीं-कहीं पर हाथी, कहीं-चूहा सहज रूप में दिखाई देता है। माँ स्वरूपा तुलसी प्रत्येक मंदिर में सहज रूप से मिलती है। उत्तर भारत के वृंदावन क्षेत्र में तो अनेक मंदिर ही तुलसी मां के बनाए गए हैं। यही नहीं मंदिरों में विभिन्न कार्यों के करने के परिणामों के भी चित्रण दिखाई देते हैं जो भारतीय संस्कृति को जीवित रखने एवं उसको श्रेष्ठतम बनाने के उपाय हैं। कहीं हम देखते हैं सत्यमेव-जयते लिखा मिलता है। कहीं विश्व का कल्याण हो जैसी सूक्तियाँ मिलती हैं। मंदिर में जल के भरे कलश मिलते हैं, वो जल संरक्षण की झाँकी है। इससे सांस्कृतिक व प्रकृति-संबंध दिखाई देता है। दक्षिण भारत के मन्दिरों में अद्भुत माण्डने चारों ओर कला के रूप को दिखाते हैं। मन्दिर में भजन, अमृतवाणी, श्री राम भजन, श्री कृष्ण भजन, कहीं गुरुवाणी, तो कहीं नमोकार मंत्र चलते ही रहते। ये है भारतीय विचार जो संस्कृति को विकास की ओर अग्रसर करता है।

भारत में तीर्थों का बहुत महत्त्व है क्योंकि यह न केवल स्थान विशेष के दर्शन करवाता है, अपितु इसके कारण भारतवर्ष के स्थानीय संसाधन बढ़ते हैं। रोजगार सृजन होता है। भारत कर्मभूमि है। ऋषियों ने यहाँ की भौगोलिक स्थिति को समझकर तीर्थाटन प्रारंभ किया। पर्यटन नहीं यह धरती प्रकृति पूजक है। यहाँ नदियाँ, पर्वत, प्रकृति को सम्पूर्ण भारत में पूजते हैं। उसका अभिनंदन करते हैं। उसके साथ जुड़ने का प्रयत्न करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वह सुरक्षित रहे, उससे अनेक प्रकार की संस्कृतियों का विकास होता है। भारत के चार धाम, सप्त पुरियाँ, 12 ज्योतिर्लिंग, 52 देवी माँ के मंदिर सम्पूर्ण भारत में फैले हैं। यही तीर्थ है। यह पूजनीय स्थान है। इन स्थानों पर जाने वाले लोगों की तपस्या विभिन्न गतिविधियों में परिलक्षित होती है।

जैसा कि देश जोड़ने के लिए यात्रा करना, अपने मन से जमीन पर सोना और पैदल चलना, मंदिरों में, गौशाला में दान करना, नदियों में स्नान करना तथा किसी क्षेत्र विशेष में कोई नुकसान प्रकृति के साथ हुआ हो तो उसका पश्चाताप करते हुए अपने गाँव के लोगों को भोजन करवाना, गाय को चारा डालना।

देशाटन-तीर्थाटन का मतलब है वहाँ की वेशभूषा, वहाँ के खानपान, वहाँ के लोकाचार, इन सब से जुड़कर उस क्षेत्र के दर्शन करना। अर्थात् क्षेत्र के विकास के लिए योगदान देना। उसके साथ एकाकार होना। भारत में बद्रीनाथ धाम से रामेश्वरम तक 3000 किलो मीटर मार्ग, तीर्थयात्रा के साथ भारत की एकता का बन्धन है। जो भारतीय संस्कृति के माध्यम से होता है। हम कहते हैं भारतीय संस्कृति भारत को सांस्कृतिक राष्ट्र बनाती है। क्योंकि यहाँ पर संस्कृति और प्रकृति, भाषा और वेशभूषा स्थान-स्थान पर अलग-अलग प्रकार की है परंतु मूल चिंतन है विश्वकल्याण का भाव। मूल चिंतन है जियो और जीने दो का भाव। मूल चिंतन है यह धरती माता हमारी माँ है। मूल चिंतन है इस प्रकृति में चराचर में जो भी संसाधन हैं वह माँ स्वरूप है। उसका उपयोग हमें बहुत सावधानी से करना है।

हम लोग मंदिरों में और समाज के लिए त्याग का भाग विकसित हो इसके लिए प्रयत्न करें। अपनी तरफ से हम प्रत्येक आने वाले बालक को एक मुट्ठी अनाज लेकर भगवान के मन्दिर में रखकर आने के लिए आग्रह करें। मंदिर दर्शन करने के लिए बोलें। वहाँ से चंदन लगाकर बच्चा आएगा तो आपको कहेगा कि मंदिर से मैंने आज भगवान का तिलक लगाया है। उसके मन में भी चंदन घिसने की और भावना पैदा होगी। वहाँ माला देखकर वह अपने घर में भी भगवान के पुष्प चढ़ाएयेगा। अर्थात् अनेक प्रकार के कार्य अनेकों प्रकार की संस्कृति वहाँ से बच्चा सीख कर आएगा। मंदिर भारत का सांस्कृतिक अनुष्ठान है और समाज का केंद्र है।

इस भावना को विकसित किया आदि गुरु शंकराचार्य ने जो भारत की एकता का मार्ग प्रशस्त करते हैं। आज भारतवर्ष में इसके कारण करोड़ों भारतीय एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा रहे हैं और

परिणामस्वरूप स्थानीय संसाधनों के माध्यम से अधिक से अधिक रोजगार सर्जन हो रहा है।

भारत के मंदिर और भारतीय अर्थव्यवस्था

भारत में सांस्कृतिक दृष्टि से जिस प्रकार से मंदिर अग्रणी भूमिका निभाते हैं वैसे ही मंदिरों द्वारा प्राचीन काल से रोजगार सृजित होते हैं। मंदिर के नजदीक रहने वाले लोग मंदिरों द्वारा अनेक प्रकार की वस्तुओं का विपणन करते हैं। पिछले दिनों में पंढरपुर महाराष्ट्र में गया। महाराष्ट्र में उस मंदिर में प्रतिदिन 30000 लोग दर्शन करने आते हैं और ग्यारस के दिन तो वहाँ लगभग दो लाख व्यक्ति आते हैं। मंदिर में जो प्रसाद चढ़ता है वह प्रसाद दूध द्वारा बना होता है और उसके कारण वहाँ पर दुकानें खड़ी हैं। उसके कारण ग्रामीण क्षेत्र में गाय पालन हो रहा है और ग्रामीणों को रोजगार, शहर में प्रसाद बनाने वालों को रोजगार मिल रहा है। माला, अगरबत्ती, दीपक, छोटी-छोटी तस्वीरें - मूर्तियाँ इसके साथ ही बिकती हैं। इस प्रकार मंदिर रोजगार केंद्र बन जाते हैं। वह सब वस्तुएँ जो मंदिर के आस-पास खड़ी होती हैं, वह पर्यावरण से और स्थानीय मुद्दों से जुड़ी हुई होती है और प्रकृति से तालमेल करके उस क्षेत्र विशेष का विकास करती हैं। भारत सरकार द्वारा प्रकाशित आँकड़ों द्वारा यह स्पष्ट होता है कि भारत में 2022 में लगभग 15 करोड़ तीर्थ यात्रियों ने यात्रा की जो रोजगार सृजन करती है। मन्दिरों से भारतीय अर्थव्यवस्था का 2 से 3 प्रतिशत प्राप्त होता है। यह सामान्य बात नहीं है। निश्चित ही यह बहुत बड़ा योगदान है। अर्थात् मंदिरों के द्वारा भारत निश्चित ही विकास की ओर बढ़ रहा है। पिछले दिनों उज्जैन में महाकाल के मंदिर में बहुत अच्छा एक कोरिडोर बना है। ऐसे ही भगवान श्री राम का मंदिर बन रहा है। ऐसे अनेक मंदिर विशेष प्रकार के विकास की ओर अग्रसर हैं, जिसके कारण लाखों

लोग रोजगार प्राप्त कर रहे हैं।

मंदिर और शिक्षा

सदियों पुराने तथ्यों को देखें तो भारत में वैदिक ग्रंथों का निर्माण मंदिर के पास में हुआ। चाहे वह उज्जैनी हो, चाहे वह गंगा का तट हो, चाहे वह गोदावरी का तट हो, चाहे वह कृष्णा का तट। सभी क्षेत्रों में श्रेष्ठ मंदिर अध्ययन के केंद्र थे। इन अध्ययन के केंद्रों से आस-पास के क्षेत्र में एक नया जागृति का कारण बनता है। शिक्षा संस्कृति साथ-साथ चलती है। काशी विश्वनाथ में पूरे भारतवर्ष से अध्ययन करने के लिए लोग आते थे। और आज भारतवर्ष में ऐसे मंदिर हैं जिनको हम लोग शिक्षा की दृष्टि से जानते हैं जहाँ इतनी उच्च कोटि की शिक्षा दी जाती थी कि वो विश्वविख्यात थे। आज भी वह केंद्र मजबूती से अपना काम कर रहे हैं। कर्नाटक में बीजापुर के सालोटगी मंदिर में, काशी विश्वनाथ में, कश्मीर में अनेक ग्रंथों की रचना हुई है। कश्यप ऋषि ने वहाँ पर अनेक मंदिरों का निर्माण किया और अनेक ग्रंथों की रचना करवाइ जैसे राज तरंगिणी और भारत मंजरी। धारा का मंदिर-कंबोज विश्व में प्रसिद्ध शिक्षा का केंद्र बना था। पल्लव वंश में महाकवि दंडी ने यहाँ पर कई ग्रंथों की रचना की। तिलहाडा विश्वविद्यालय, पुष्पगिरी नालंदा कौन नहीं जानता। विश्व के अनेक देशों से शोधार्थी अध्ययन करने के लिए आया करते थे। उड़ीसा में विक्रमशिला विश्वविद्यालय अत्यंत महत्त्वपूर्ण था। आज कई मंदिरों में वेद विद्यालय चल रहे हैं। शिक्षा आगे बढ़ रही है। शिक्षा क्षेत्र में नई शिक्षा नीति से मातृ भाषा पर जोर दिया जा रहा है। शारदा पीठ (724 C.E) में खगोल विज्ञान, सूर्य सिद्धांत, जैसे अनेक ग्रंथों में अध्ययन होते थे। यह अध्ययन उज्जैनी में भी होते थे। अत: मंदिर शिक्षा के केंद्र रहे हैं और वर्तमान में भी है।

मंदिर और सामाजिक जीवन

भारतीय जीवन पद्धति में भगवान को साकार रूप में मंदिर में पूजा जाता है उनको प्रसाद चढ़ाया जाता है। उनको वेशभूषा धारण कराई जाती है। उनका शृंगार किया जाता है। प्रत्यक्ष जीवन पद्धति का दर्शन किया जाता है। इस कारण से दर्शनार्थी जब जाते हैं, तो साकार रूप में भगवान को जैसा देखते हैं अपने जीवन में वैसा ही धारण करते हैं। समाज जीवन में कथा वाचन समाज का मार्गदर्शन करता है। यह मार्गदर्शन कभी गीता के कर्म उपदेश को समाज में मंदिरों द्वारा बताया जाता है, तो कभी श्रीरामचरितमानस के माध्यम से श्री राम को एक मर्यादा पुरुषोत्तम और उनकी क्रियाओं को समाज के लिए श्रेष्ठ रूप में बता कर समाज का मार्गदर्शन किया जाता है। कई स्थानों पर छोटे-छोटे केंद्रों पर अनेक प्रकार की कथाएँ चाहे माँ की कथा हो, चाहे वह गाय की कथा हो, चाहे वह नानी बाई के मायरे की कथा हो, चाहे वह मीराबाई के भजन हों, चाहे वह नामदेव जी की कथा हो, यह सब समाज का मार्गदर्शन करते हैं। और मंदिरों के माध्यम से समाज बहुत आगे बढ़ रहा है, ऐसा दिखाई देता है।

आइए हम लोग मंदिरों में और समाज के लिए त्याग का भाग विकसित हो इसके लिए प्रयत्न करें। अपनी तरफ से हम प्रत्येक आने वाले बालक को एक मुट्ठी अनाज लेकर भगवान के मन्दिर में रखकर आने के लिए आग्रह करें। मंदिर दर्शन करने के लिए बोलें। वहाँ से चंदन लगाकर बच्चा आएगा तो आपको कहेगा कि मंदिर से मैंने आज भगवान का तिलक लगाया है। उसके मन में भी चंदन घिसने की और भावना पैदा होगी। वहाँ माला देखकर वह अपने घर में भी भगवान के पुष्प चढ़ाएयेगा। अर्थात् अनेक प्रकार के कार्य अनेकों प्रकार की संस्कृति वहाँ से बच्चा सीख कर आएगा। मंदिर भारत का सांस्कृतिक अनुष्ठान है और समाज का केंद्र है। ❑

भारतीय मंदिरों का सामाजिक सांस्कृतिक अवदान

डॉ. महेश ठाकर
आचार्य, नारायण विद्याविहार, भरूच

हमारे देश में हमारी संस्कृति की आत्मा मंदिर हैं। उनका इतिहास सदियों पुराना है और उनका निर्माण वास्तु स्थापत्य के आधार पर किया गया था। मंदिर वह स्थान है जहाँ अपने दु:खो के लिए भगवान से प्रार्थना की जाती है।

हमें हमारी जरूरतें ही नई शोध के लिए प्रेरित करती हैं। समाज को जब शिक्षा की जरूरत लगी तब गुरुकुल स्थापित हुए। समाज को जब लगा कि अब सेहत ठीक नहीं है तो अस्पताल का निर्माण हुआ। वैसे ही हमारे ऋषि-मुनियों की दूरंदेशी में समाज में शांति और उच्च जीवन के लिए जरूरी मंदिरों के निर्माण हुऐ। ऋषि मुनियों ने सोचा होगा कि समाज का सर्वांगी उत्कर्ष करना है और आध्यात्मिक ऊँचाई पे ले जाना है तब मंदिरों की आवश्यकता लगी होगी।

मन को स्थिर करे वो मंदिर!

परम शांति का अनुभव कराऐ वो मंदिर! उच्च जीवन के लिए प्रोत्साहित करे वो मंदिर! परमात्मा से मिलने का रास्ता दिखाऐ वो मंदिर!

हमारी भारतीय संस्कृति में माना जाता है कि हमारा शरीर पंचमहाभूतों से बना हुआ है। इसी लिए हमारा समाज प्रकृति की पूजा करने लगा और यह पूजा से उनको शांति का अनुभव होने लगा तब उन्होने सोचा कि ये पंचमहाभूत प्रकृति को बनाया किसने होगा और ये विचारधारा से मेरा मानना है कि केनोपनिषद का जन्म हुआ होगा। इसी तरह मानव को समग्र सृष्टि प्रभुमय लगने लगी होगी।

ज्योतिषी विष्णुभुर्वनानीविष्णु
वनानि विष्णुगिरयो दिशश्च।
नधः समुद्राश्चैव स एव सर्व
यदस्ति यन्नास्ति च विप्वर्य।।

और इसी विचार से हमारे मंदिरों का अस्तित्व स्थापित हुआ होगा और हमारी आर्य परंपरा के अनुसार भगवान विश्वकर्मा और ब्रह्मा के आदेश से मंदिर रचे गए। विश्वकर्मा ने वास्तुशास्त्र नामक ग्रंथ लिखा और हमारे मंदिर स्थापत्य की भारतीय परंपरा शुरू हुई। उसको नागरी मंदिर माना जाता है। मय दानव से बना हुआ मयमतम ग्रंथ अनुसार दक्षिण भारतीय मंदिरो की परंपरा शुरू हुई। अगत्स्य मुनी और कश्यप ऋषि ने भी ग्रंथ लिखे। उस हिसाब से बने मंदिरों को 'द्रविड़' मंदिर माना जाता है। नर्मदा के दोनो किनारे पर जो मंदिर बने हुऐ हैं, उसको 'वेषर' मंदिर कहते हैं। सनातन हिंदू परंपरा में मंदिरों को देवरूप माना गया है।

हमारी संस्कृति में पशु-पक्षी, वृक्ष को भी पूजनीय माना जाता है।

मंदिर मात्र देवघर नहीं है जिसमें केवल आरती, पूजा, थाल, घंटारव ही होता है, परंतु एक ऐसा स्थान है जहाँ मानवमन और आत्मा को शांति प्राप्त होती है। मंदिर प्रेम, शांति और संवादिता का स्थान है।

मान धाम्स्तु सम्पूर्ण जगत संपूर्णता भवेत्। (मयमत 22 / 92)

संस्कृति के विकास में मंदिर का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण होता है। उस हिसाब से ही जहाँ मंदिर बना है, उसके आसपास नगर की रचना होती थी। हम जानते हैं कि कंबोडिया के अंगकोरवाट में विश्व का सबसे बड़ा हिंदू मंदिर है जो 25 चो.किमी. के विस्तार में स्थित है। इन्डोनेशिया मे बोरु बुदुर बौधिसम का भव्य और बड़ा मंदिर है। किसी भी नगर में बसे नगरवासियों के लिए मंदिर याने कि ईश्वर केन्द्र स्थान में माने जाते हैं। इसीलिए मंदिर की हर प्रवृत्ति जीवन में शुभ मानी जाती है। (तमिल मान्यता) जिस गाँव में मंदिर न हो उस गाँव में रहना नहीं चाहिए। विदेशों में जब टाउन प्लानिंग होता है तो सबसे पहले क्रिस्टियन लोग चर्च का स्थान निश्चित करते हैं और नगर के बीच में जलाशय भी बनाते हैं। लंदन की पार्लियामेंट हाउस के नीचे चपल (देवस्थान) बनाया गया है और पार्लियामेंट में बैठने वाले सभी सदस्य उनके सामने प्रार्थना करने के बाद ही सदन में जाते हैं। उनकी प्रार्थना है –

"O God !You are the ruler of this world. Please give us wisdom to be able to rule with justice."

प्रार्थना से माना जाता है कि उनके बीच मनमुटाव कम होता है। वैसे तो मंदिर एक सांस्कृतिक परिषद है और उनको जीवन का केन्द्रबिंदु माना जाता है। हमारी आध्यात्मिक वैचारिकता के अनुसार परमात्मा को मध्य मे रखने से हमारी आध्यात्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक और सामाजिक प्रवृति का केन्द्र मंदिर है। उसका मतलब ये हुआ की मानव जीवन की सभी जरुरी या तो को पोषने वाला मंदिर ही है। शिल्प रत्नाकर ग्रंथ में मंदिर की रचना के सुंदर हेतुओं को दर्शाया गया है।

नगराणां भूषणाथ च,
देवानां निलयाय च
लोकानां धर्मदेत्वथ,

हमारे देश में मंदिर ही गृहस्थ और साधुसंन्यासी का संगम स्थल है और मंदिरों के कारण ही हमारा स्थापत्य, ज्योतिशास्त्र, नक्काशी के कारीगरों को अपने ज्ञान को प्रदर्शित करने का अवसर मिला है। हमारे देश में प्राचीन काल से ही अनेक देवी देवताओं के छोटे बड़े मंदिर की परंपरा विविध भक्ति की धाराओं से होते हुए प्रस्थापित हुए हैं। हाँ, कभी-कभी हमारी ये भव्य और दिव्य परंपरा को विधर्मियों से मध्यकाल में क्षतिग्रस्त होना पड़ा। पर यह सच है कि भारत की राजनीति में धर्म का रक्षण करने में और सामाजिक समरसता की संस्कृति को बरकरार रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान है।

क्रीड़ाथ सुरयोषिताम।
आलयं सर्वभूतानां
विजयाय जितात्मनाम्
धर्माथकममोक्षाणां प्राप्ति
हेतुच्व कामदः ।।

मंदिरों से हमारे शास्त्र, संत, भक्त, शूरवीर और दाताओं के निर्माण हुए मंदिरों से ही स्थापत्य, संगीत, साहित्य, समाज में स्थापित हुए और इसलिए हमारे राष्ट्रपिता गाँधी जी कहते हैं –

"We the human family, are not all philosophers. We are of the earth, very earthly, and we are not satisfied with contemplating the invisible God. So I ask you to approach temples not as if they represented a body of superstitions. We have to approach these temples in a humble and penitent mood."

भक्तों के मन में मंदिर मात्र मूर्तियाँ रखे जाने वाला स्थापत्य नहीं है, बल्कि वो एक चैतन्य तत्व है। हमारी धार्मिक सभ्यता का संग्रहस्थान है। मंदिर तोड़े जाने से संस्कृति और धर्म का विनाश होता है जर्मन के विदुषीक्रेम रिसे ने हमारे मंदिरों के बारे में कहा है कि भारतीय मंदिर मानव जीवन का केन्द्र है। अतः मंदिर सामाजिक, सांस्कृतिक, आध्यात्मिक, उत्सव, नृत्य, संगीत जैसी प्रवृत्तियों को गति देने का स्थान है। यदि भारतीय जीवन में से मंदिर सभ्यता को हटाया जाए तो लोगों के जीवन में शून्य अवकाश होगा। मंदिर में होने वाली पूजा, भक्ति और साधना से मंदिर में दिव्य शक्तियों का संचार होता है। उनके सूक्ष्म तरंग वातावरण में फेलने से मानव जीवन में उनको असर दिखती है। मंदिर में प्रेरित किए जाने वाले सदाचार से मानवजीवन पवित्र बनने लगता है। विश्व के तमाम धर्मों में अलग-अलग रूप से मंदिर होते हैं। किसी में मूर्ति होती है तो किसी में ग्रंथ होता है। किसी में अग्नि होती है और वो अपनी अपनीश्रद्धा के केन्द्र होते हैं। काबा, सिनेगोग, चर्च, अगियारी, देरासर, उपाश्रय, मंदिर, मस्जिद, वगेरे मंदिर के स्वरूप ही है। रामकृष्ण परमहंस कहते थे, मंदिर दीवाने आम है। जिसमें जाने वाला हरेक व्यक्ति प्रभु को मिल सकता है। मंदिर में भातृभाव पलता है, गुरुता और लघुताग्रंथियाँ दूर होती हैं, मंदिर शास्वत है। वो हमारी आने वाली पीढ़ियों को भी प्रेरणा देता है। बद्रीनाथ, केदारनाथ, जगन्नाथ, द्वारका, रामेश्वर, काशी विश्वनाथ और अब राम मंदिर, कई सालों से स्थित है। लाखों लोग तीर्थाटन करके पुण्य कमाते हैं।

ऐसा माना जाता है हमारे देश में 35 लाख से ज्यादा मंदिर हैं। जिससे भारत जुड़ा हुआ है। इससे राष्ट्रीय एकता बनी रहती है। जैसे की शंकराचार्यजी ने मठों की स्थापना की। इसमें उत्तर में बनाए गए बद्रीनाथ में दक्षिण के पुजारी, पूर्व जगन्नाथ में गुजरात के पुजारी, और ऐसे चारों तीर्थों में आमने सामने प्रदेश के पुजारियों को जोड़ कर राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा दिया

होगा। मंदिरों में होने वाले उत्सव जैसे रामनवमी, जन्माष्टमी स्थापित किए गए। भगवान की जयंती, वसंत पंचमी, एकादशी, रथयात्रा, हिंडोला दर्शन, धर्नुमास, मानव समाज को नवपल्लवित करते हैं और हमारी संस्कृति की भव्यता और दिव्यता दर्शाते हैं। ऐसा माना जाता है कि मंदिर में घंटाराव, कथा, कीर्तन, सुगंध, प्रसाद, चरण स्पर्श और शंखनाद से हमारी पंचेद्रियों को तृप्ति मिलती है। मंदिरों से देहशुद्धि भी होती है क्योंकि मंदिर में जाने वाला हरेक व्यक्ति स्नान करने के बाद ही मंदिर जाता है। मंदिर में जाने से तन के साथ-साथ मन की शुद्धि भी होती है। वैसे तो मंदिर, समाज के सर्व प्रकार के उत्कर्ष के केन्द्र है। जैसे पुराने समय मे मगर की रक्षा करने के लिए कोट बनाया जाता था, वैसे ही मंदिर हिन्दू संस्कृति के संस्कार और धर्म की रक्षा करते हैं। और हमारी युवा पीढ़ी और आने वाले पीढ़ी को हमारी परंपरा से परिचित कराते हैं और मंदिर से ही सांस्कृतिक और धार्मिक परंपराओं एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में स्थापित होती है। मंदिर से ही हमारे बालवृद्ध सभी जन संस्कृति को पहचानते हैं, अपनी जीवन प्रणाली बनाते हैं और अपने धर्म का गौरव भी करते हैं। मंदिर हमारी अध्यात्म वृत्ति को पोषण देते हैं।

अमेरिका के एन्टलान्टा शहर में रहने वाले विश्व के प्रसिद्ध बुद्धिवादी और चिंतक डॉ. बेंन्जामीन ने मीसीगन युनिवर्सिटी की एक कोन्फरंसमे कहा था की,

"We have more educated people than at any time in history. Yet, our humanity is a diseased humanity. It is not knowledge we need, humanity is in the need of something spiritual,"

सांप्रत समय में भौतिकवाद को बढ़ावा मिला है और सभी लोग पैसों के पीछे भाग रहे हैं। पर इससे सुख प्राप्त नहीं होता क्योंकि हमारे मूलत: संस्कार विलुप्त होने लगे हैं। किसी भी आदमी का जीवन रोटी, कपड़ा और मकान से नहीं चलता। पर जीवन के संघर्षों, सुखदु:ख, मान-अपमान, जय-पराजय, हताशा, निराशा, मानसिक त्राण, अकेलापन और अशांति वे सभी आध्यात्मिक केन्द्र और आध्यात्मिक शक्ति हैं जो हमें मंदिरों से मिलती हैं उसे दूर होते हैं। मंदिर से आदमी का जीवन उन्नत होगा, मंदिर से दूर होने के कारण विश्व में आतंक, हिंसा, युद्ध, गुंडागर्दी, चोरी, खून, बलात्कार की घटनाएँ बढ़ रही हैं। और संस्कार के बिना जीवन बदतर होता जा रहा है और वैसे में असंख्य लोगों को दिशा देने का काम मंदिर के संस्कार धामों से होता है। मंदिर में होते उत्सव, सभायें, शिविर, परिसंवाद, नृत्य, संगीत, कला को बढ़ावा देता है। नैतिक अध:पतन के सामने मंदिरों में मिलता आध्यात्मिक शिक्षण से नैतिकता बढ़ती है। मंदिरों में सेवा प्रवृति भी हमारी नई पेढ़ी को संस्कार देती है, इसीलिए इतिहास में मंदिरों का प्रदान अति महत्त्व का है। व्यसन मुक्ति, आहार और आचार शुद्धि, नम्रता और सेवा, आस्तिकता के पाठ, मंदिर में सहजता से सिखाए जाते हैं। मंदिरों में सुरक्षा भी सिखाई जाती है। योगासन, शारीरक कसरत, खेलकूद आदि से मन और तन मजबूत होते हैं। शास्त्रों मे कहा गया है, 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्...'' हमारा तन अच्छा हो इसीलिए आरोग्य आधारित प्रवृतियाँ भी होती है। मंदिरों में आयुर्वेदिक औषधि को बढ़ावा दिया जाता है और कम से कम खर्च में रोगियों को उपचार दिया जाता है। तन और मन की स्वस्थता मंदिर देता है। मंदिर शिक्षित क्षेत्र में भी काम करता है। हमारे संविधान में धर्म को शिक्षक से अलग रखा गया है। शिक्षा केवल जीवन निर्वाह के लिए नहीं

पर जीवन के उद्धार के लिए भी जरूरी है। मंदिरों में संस्कृत पाठशालाएँ, पुस्तकालय भी चलते हैं मातृभाषा ये हमारी संस्कृति का वहन करने के लिए एक माध्यम है। हमें ये भूलना नहीं चाहिए। मेरा मानना है, यदि हम मातृभाषा को भूल जाएँगे तो हम हमारी संस्कृति को भी भूल जाएगे। क्योंकि भाषा और संस्कृति एक दूसरे के पूरक हैं। और मातृभाषा के अलावा परभाषा के मोह में हम कौटुंबिक जीवन और संस्कृति का ह्रास कर रहे हैं।

मंदिर मानवीय मूल्यों की रक्षा करते हैं यदि मनुष्य मानव धर्म का पालन करे तो कोई धर्म की जरूरत नहीं होती।

हमारे तुलसीदासजी कहते हैं –

''परहित सरिस धरम नहीं भाई।''

आज के आधुनिक युग में हम अन्य ग्रह पर पहुँच गए हैं पर मानव के बीच का अंतर बढ़ रहा है। सभी लोग स्वकेन्द्री होने लगे हैं। पर मंदिरों के कारण हमारी मानवता जागृत है। समाज में कहीं भी कोई भी मुसीबत आती है, तब हमारे मंदिर सेवा के केन्द्र बनते हैं। भले ही वो दुष्काल हो, भूकंप हो, तूफान हो या अबोल पशुओं के लिए कुछ करना जरूरी हो। तब वो मंदिर ही आगे रहते हैं और मंदिर रोटी, कपड़ा से ऊपर उठकर दवाइयाँ, और जरूरी तमाम सुविधाओं के लिए हमेशा तत्पर रहता है इस कारण संप यानि की एकता, सेवा, समर्पण की भावनाएँ जागृत होती हैं। मंदिर की वजह से युवा और बच्चों मे व्यसन भी नही होता है और सभ्य समाज बनता है।

मंदिर पर्यावरण की रक्षा भी करते हैं, हमने हमारे औद्योगिक और अन्य विकास से प्रकृति को बहुत नुकशान पहुँचाया है और उसी वजह से जल, वायु और जमीन दूषित हुए। मंदिरों में आयोजित किए जाने वाले पर्यावरणवादी कार्यक्रमों से पशु-पक्षी और अन्य जीवों की रक्षा होती है। मंदिर की गौशालाओं से हमें प्राकृतिक संतुलाओं को ठीक कर सकते हैं। मंदिर से कौटुंबिक मूल्यों को बढ़ावा मिलता है। मंदिर कुटुंब को जोड़ने का काम करता है। हमारी खानदानी, धर्म, संस्कार और भाषा के सिंचन का कार्य भी करते हैं। वैसे तो हमारी संस्कृति में घर को मंदिर कहा गया है। इसीलिए हमारे घर में हर रोज सुबह शाम आरती, प्रार्थना करके घर को मंदिर जैसा पवित्र रखने का रिवाज है।

मानव जीवन में ब्याह का अति महत्त्वपूर्ण संस्कार भी मंदिरों मे आयोजित किया जाता है।

मंदिर और दान पुण्य हमारे शास्त्रों के अनुसार मंदिर निर्माण से हमको पुण्य मिलता है। मंदिर निर्माता सर्व पाप मे से मुक्त होकर वैकुंठ मे जाता है। – नृसिंह

पुराण

वामन पुराण में भी कहा गया है कि मंदिर में उद्यान बनाने से दिव्य सुख की प्राप्ति होती है और उनकी सातों पीढ़ी का उद्धार होता है।

विष्णु धर्मोत्तर :

शास्त्र मे कहा गया है, 'मंदिर बनाने वाला व्यक्ति राजसूय अश्वमेघ यज्ञ जितना फल पाता है और अनंत सुख की प्राप्ति करता है।'

स्कंद पुराण :

मंदिर बनाने की शरूआत करने से ही सात जन्म के पाप दूर होते हैं।

भागवत पुराण

जो आदमी मंदिर के लिए जमीन का दान दे या उत्सव के लिए दान देता है वो अनंत सुख का अधिकारी होता है, शास्त्रों के इन वचनों के अनुसार मंदिर निर्माण का बहुत महत्त्व है, निर्माता से अधिक लाभ समाज को भी होता है।

हमारे धर्म और संस्कृति को युगों से बरकरार रखने के लिए मंदिरों का ही योगदान रहा है।

हमारे देश में मंदिर ही गृहस्थ और साधुसंन्यासी का संगम स्थल है और मंदिरों के कारण ही हमारा स्थापत्य, ज्योतिषशास्त्र, नक्काशी के कारीगरों को अपने ज्ञान को प्रदर्शित करने का अवसर मिला है। हमारे देश में प्राचीन काल से ही अनेक देवी देवताओं के छोटे बड़े मंदिर की परंपरा विविध भक्ति की धाराओं से होते हुए प्रस्थापित हुए हैं। हाँ, कभी-कभी हमारी ये भव्य और दिव्य परंपरा को विधर्मियों से मध्यकाल में क्षतिग्रस्त होना पड़ा। पर यह सच है कि भारत की राजनीति में धर्म का रक्षण करने में और सामाजिक समरसता की संस्कृति को बरकरार रखने में महत्त्वपूर्ण योगदान है और इसीलिए भारत एक सांस्कृतिक राष्ट्र भी कहलाता है, और सभी संस्कृति की आत्मा भी! आर्थिक केन्द्र भी बने हैं, कई लोगों को रोजी-रोटी प्रदान कर रहे हैं। ❑

भारत के मंदिरों का ध्वंस और पुनर्निर्माण

अमोल काटेकर
राणी लक्ष्मीबाई
कन्या शाला, वाशीम,
जि. वाशीम (महाराष्ट्र)

भारतभूमी यह मात्र एक भूमि का टुकड़ा नहीं है। किंतु यह चेतन अवस्था में अविरत ज्ञान देने वाली माता है। भारत की पहचान यहाँ की हजारों वर्षों की प्राचीन संस्कृति में दिखाई देती है। जिसका सृजन यहाँ के मंदिरों ने किया है। हिंदू धर्म मे तैतीस करोड़ देवी देवताओं को पूजा जाता है। जिसमें अवनी, अवकाश एवं पाताल में जो भी चेतन अचेतन है उन सबमें ईश्वर का रूप दिखाया गया है।

किंतु मनुष्य जड़ शरीर से केवल धरातल पर ईश्वर को देख सकता है। इसी कारणवश हर एक ईश्वरी शक्ति को मंदिर के रुप में संजोया गया है और संस्कृत मंत्रों से अभिमंत्रित कर के उनमें स्थित देवी देवताओं को चेतन अवस्था में लाने का काम मंदिरों ने किया है।

भारतीय मंदिर केवल एक पत्थरों से बनी वास्तु नहीं है, अपितु स्थापत्यशास्त्र का विश्व का प्राचीनतम इतिहास है जो मनुष्य के जीवन को समृद्ध बनाता है।

प्राचीन मंदिरों में कला, ज्ञानविज्ञान, मूर्ति निर्माण, धर्म, मानवता, विश्व निर्माण, खगोलशास्त्र, मनुष्य, प्राणी, पक्षी एवं वनस्पति इन सबकी उत्पत्ति आदि विषयों का संपूर्ण ज्ञान मंदिरों में दिखता है।

भारतभूमि एवं यहाँ के मंदिर प्राचीन काल से ज्ञान संपादन तथा संवर्धन के प्रमुख केंद्र रहे हैं और जहाँ ज्ञान है उसे संपादन करने के लिए विद्यार्थी आते रहते हैं। भारत में ऐसे विद्यार्थियों की कमी नहीं थी। प्रमुख प्राचीन विद्यापीठ शारदा, तक्षशिला, नालंदा जिनका संबंध शिक्षा के साथ मंदिरों से भी रहा है। जहाँ के संस्कृत भाषा के ज्ञानी पंडित मंदिरों में पूजा पाठ के साथ-साथ ज्ञानदान का महत्त्वपूर्ण कार्य करते थे। जिसके कारण मनुष्य जीवन के हर पहलू का ज्ञान का सृजन होता था, और भारत का सामाजिक जीवन वैभवशाली एवं समृद्ध होता था। हर एक व्यक्ति जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आनंद से परिपूर्ण था।

उदाहरण के तौर पर देखा जाये तो पुरी का जगन्नाथ मंदिर, भुवनेश्वर का लिंगराज मंदिर, तिरुअनंतपुरम का पद्मनाभ मंदिर, मदुराई का मीनाक्षी मंदिर एलोरा का कैलाश मंदिर, कोणार्क का सूर्य मंदिर ऐसे अनेक मंदिर हैं तथा थे जो विश्व में अपने आप में स्थापत्य कला का अद्‌भुत संगम हैं। जिस काल में विश्व के पश्चिमी देशों में मानवता अपने पैरों पर खड़े रहने की कोशिश कर रही थी। तब हम भारतीय जीवन के हर क्षेत्र में प्रगत थे।

भारत की इसी प्रगति को छिन्न विछिन्न करके ज्ञान को लूटने के लिए विदेशी आक्रांताओं ने भारत में प्रवेश किया। जो केवल सब कुछ तहस नहस

करने के लिए था।

देश वसुधैव कुटुंबकम् के शांति मंत्र के मार्ग पर चल पड़ा था। जो इन विदेशी आक्रांताओं को समझाने योग्य नहीं था। उन्हें मनुष्य समझकर शांति मंत्र समझाना यही हिंदू समाज की सबसे बड़ी भूल थी। समाज अपनी विजीगीषु प्रवृत्ति भूलकर केवल शांति से समाधान में विश्वास करने लगा था। जिसके कारण मुगलों ने तथा विदेशी आक्रमणकारियों ने सबसे पहले हिंदुस्तान के ज्ञान केंद्र रहे मंदिरों पर हमला किया। जो हमारी प्रगत संस्कृति को मिटाना चाहते थे, और सफल भी रहे। लेकिन पूरब और दक्षिण के भारतीयों ने डट कर इनका विरोध किया और अपने मंदिरों को सुरक्षित किया। जिसमें पुरी के जगन्नाथ मंदिर पर सोलह बार विदेशी आक्रमण हुए। लेकिन वहाँ के हिंदू समाज ने यह आक्रमण अपनी शक्ति से कामयाब नहीं होने दिए। लेकिन उत्तर और पश्चिम भारत के मंदिर नेस्तनाबूत कर दिए गये। जिसमें अयोध्या का रामजन्मभूमि मंदिर, भगवान श्रीकृष्ण की जन्मस्थली मथुरा का मंदिर, हिंदू धर्म का सबसे बड़ा ज्ञान केंद्र काशी का बाबा विश्वनाथ मंदिर, गुजरात के तट का सोमनाथ मंदिर ऐसे अनेकों अनेक मंदिरों को इन विदेशी आक्रांताओं ने धराशाई कर दिया। इनको केवल पठारी प्रदेश में ही युद्ध करना आता था। पहाड़ों में जाने से ऊँचाई से ये डरते थे। इसी कारण विदेशी आक्रमणकारी केदारनाथ, बद्रीनाथ, तुंगनाथ, अमरनाथ, माता वैष्णोदेवी जैसे मंदिरों तक नहीं पहुँच सके। परंतु इन्हें रोकने के लिए कोई भी हिंदू राजा यशस्वी नहीं हो सका। जिसके कारण इन्हें माफ किया गया। किंतु मेवाड़ के महाराज महाराणा प्रताप तथा महाराष्ट्र के छत्रपती शिवाजी महाराज इन दो राष्ट्रपुरूषों ने हमारे रामायण तथा महाभारत को अच्छी तरह समझा और धर्म राज्य स्थापित करने के लिए अधर्मी मुगलों को और उनकी मानसिकता को समझ कर जैसे को तैसा जवाब देना शुरू किया। और आधे से ज्यादा हिंदुस्तान को मुगलों से सुरक्षित रखा। मुगलों द्वारा गिराए गये मंदिरों का पुन:निर्माण कराया। इनमें माता अहिल्याबाई होलकर ने ज्योतिर्लिंग मंदिरों का पुन: निर्माण किया। जिसमें काशी विश्वनाथ मंदिर महाराष्ट्र का औंढा नागनाथ मंदिर प्रमुख हैं।

काल के साथ मुगलों द्वारा मिटाया गया हिंदू मंदिरों का पुन निर्माण होना है। भारत माता को फिर से सोने की चिड़िया के रूप में पुनः स्थापित करने की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी इस देश के हर एक भारतीय हिंदू नागरिक की है। जो आने वाले हजारों वर्षों में हमारे ज्ञान केंद्र मंदिरों को संरक्षित रखने की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेकर उसका निर्वहन करें। क्योंकि हमारे राष्ट्रपुरुष महाराणा प्रताप, छत्रपती शिवाजी महाराज तथा अहिल्याबाई होलकर निरंतर प्रेरणास्रोत बनकर हमारे साथ रहेंगे। जो हमें मुगलों का काला इतिहास कैसे मिट्टी में मिलाना है यह अपने पराक्रम से हर भारतीय के मनमंदिर में सदा बसे रहेंगे।

आज भी हम देखते हैं भारत में जहाँ भी मंदिर हैं वहाँ का समाज, जीवन के हर क्षेत्र में समृद्ध है। आज हिंदुस्तान फिर एक बार अपना समृद्ध सांस्कृतिक इतिहास देखना चाहता है। जिसकी शुरुआत अयोध्या में श्रीराम जन्मभूमी मंदिर से हो रही है।

काल के साथ मुगलों द्वारा मिटाया गया हिंदू मंदिरों का पुन निर्माण होना है। भारत माता को फिर से सोने की चिड़िया के रूप में पुन: स्थापित करने की महत्त्वपूर्ण जिम्मेदारी इस देश के हर एक भारतीय हिंदू नागरिक की है। जो आने वाले हजारों वर्षों में हमारे ज्ञान केंद्र मंदिरों को संरक्षित रखने की जिम्मेदारी अपने कंधों पर लेकर उसका निर्वहन करें।

क्योंकि हमारे राष्ट्रपुरुष महाराणा प्रताप, छत्रपती शिवाजी महाराज तथा अहिल्याबाई होलकर निरंतर प्रेरणास्रोत बनकर हमारे साथ रहेंगे। जो हमें मुगलों का काला इतिहास कैसे मिट्टी में मिलाना है यह अपने पराक्रम से हर भारतीय के मनमंदिर में सदा बसे रहेंगे। ❑

भारत के मंदिरों का इतिहास और संस्कृति – बृहदीश्वर मंदिर एक अध्ययन

डॉ. प्राची मोघे

सहायक प्रोफेसर (पुरातत्व), पुरातत्व विभाग,सी.ई.एम.एस., मुंबई विश्वविद्यालय, मुम्बई

भारत में गुप्त काल से मंदिर स्थापत्य की परंपरा चली आ रही है। उत्तर भारत में नागर शैली, उड़ीसा में रेखा देऊळ, मध्य भारत में वेसर, भूमिज और दक्षिण भारत में द्रविड शैली प्रचलित है। मंदिर सिर्फ स्थापत्य विशेष नहीं होता अपितु सांस्कृतिक केंद्र होता है। हर ग्राम मंदिर केंद्री होता है। ग्राम का आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक व्यवहार मंदिर के साथ जुड़ा हुआ होता है। भारत के कोने-कोने में ऐसे मंदिर हैं। उनकी एक अक्षुण्ण परंपरा है। यहाँ हम तमिलनाडु के तंजावूर के बृहदीश्वर मंदिर का सांस्कृतिक अध्ययन करने की चेष्टा करेंगे।

पेरुवाडिया कोईल किंवा तानजूर पेरिया कोईल, बृहदीश्वर मंदिर, राजराजेश्वर मंदिर, राजेश्वरम इन नामों से बृहदेश्वर मंदिर ये मंदिर जाना जाता है। युनेस्को के विश्व धरोहर के अंतर्गत इस मंदिर का समावेश होता है। चोला राजवंश का यह मंदिर एक महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस मंदिर निर्माण के समय चोल राजवंश संस्कृति की चरम सीमा पर थी। चोल स्थापत्य, सामाजिक, आर्थिक जीवन, राजकीय तत्त्वज्ञान, शिल्प कला, धार्मिक कर्मकांड जैसे पूजा अर्चना, उत्सव, त्यौहार, नृत्य गायनादी कला सभी का संपूर्ण चित्रण इस मंदिर और मंदिर के उत्कीर्ण लेख, मंदिर की पूजा-पद्धति आदि से प्रतीत होती है। बृहदीश्वर मंदिर संस्कृति दर्शक है। इस तरह इसका सर्वांगीण अध्ययन करना बहुत आवश्यक है।

चोल राजा अरुमोझीवर्मन अर्थात् राजराज प्रथम ने ई.स. 1002 में इस मंदिर का शिलान्यास किया था इस मंदिर का निर्माण ई.स. 1010 में पूर्ण हुआ। भारत के सर्वोत्तम मंदिरों में से यह मंदिर है। चोल साम्राज्य की भव्यता, समृद्धि, ऐश्वर्य का प्रतीक यह मंदिर है। चोल साम्राज्य की भव्यता, समृद्धि, ऐश्वर्य और सुविकसित कला का प्रतीक यह मंदिर है। भौमितिक रचनाएँ, बहुमुखी, चौरस तल के भव्य खंबे, नक्काशी इसकी विशेषता है। इस मंदिर का निर्माण राजा का चक्रवर्ती रूप, विश्व नियंता की भूमिका जताता है। इस लिए इस मंदिर को राजराजेश्वर मंदिर भी कहा जाता है। राजा की दृष्टि, उसकी ताकत, उसकी विश्वसनीयता का रूप का प्रतीक है ये मंदिर। इस मंदिर में राजा के सभी संस्कार जैसे राज्यारोहण आदि मंदिर के संस्कारों में जैसे भगवान शिव की मूर्ति की प्राणप्रतिष्ठापना का प्रतीक है। राजा खुद भगवान शिव का अवतार माना जाता है इसलिए देवराज की यह संकल्पना मध्ययुगीन हिंदू राजकीय तत्त्वज्ञान में पनपी है।

चोल सम्राट राजराज प्रथम को साम्राज्य विस्तार में बताया गया है। मंदिर में जो दान दिये गये उसमें ये साम्राज्य विस्तार करते समय जो पराजित राजा थे उनसे प्राप्त संपदा है। उदाहरण के लिए उत्कीर्ण लेख में लिखा है कि राजराजा के

23 और 29 वर्ष में उन्होंने चेरा राजा और मलायनाडू के पांड्य राजा को पराजित किया था तब मंदिर को सुवर्ण दुंदुभी उपहार स्वरूप दिए थे और खुद को 'शिवपदशेखर' उपाधि प्राप्त की थी। सत्याश्रय को पराजित करने के बाद मंदिर को सुवर्ण पुष्प भेंट किये थे।

मंदिर आर्थिक संस्कृति का केंद्र भी था अर्थशास्त्र में बँकिंग व्यवसाय महत्त्वपूर्ण विषय है। बैंक स्थाई डिपॉजिट लेते हैं और उनका ब्याज देते हैं। राजराजेश्वर मंदिर के उत्कीर्ण लेखों के अनुसार मंदिर की मुख्य मूर्ति-राजराजेश्वर और दक्षिण मेरू वितनकर के लिए राजा राजराजदेव के अफसर ने दो जगह पैसे जमा रखे थे। पहला डिपॉजिट तंजावूर के बाजार में व्यापारियों के लिए था। इसके बदले वे मंदिर को इलायची और चंपक पुष्प देते थे। दूसरा डिपॉजिट दूसरे ग्रामवासियों के लिए रखा था। वे ग्रामवासी मंदिर को खसखस देते थे। भगवान की मूर्ति के स्नान में इन चीजों का उपयोग लाया जाता था।

मंदिर के उत्सव एक आर्थिक विनियोग का बड़ा साधन था। मंदिर के संगीतकारों ने फिक्स्ड डिपॉजिट रखा था जिसका ब्याज भगवान राजराजेश्वर और अदवल्लर के उत्सव में नगाड़ा बजाने वालों को दिया जाता था। राजराजेश्वर मंदिर के उत्कीर्ण लेखों के अनुसार मंदिर कि मुख्य मूर्ति-राजराजेश्वर और दक्षिण मेरू वितनकर के लिए राजराजेश्वर मंदिर के व्यवस्थापक ने दो जगह पैसे डिपॉजिट रखे थे पहिला डिपॉजिट तंजावूर के नजदीक एक ग्राम के कृषि में रखा था। इसके बदले वे मंदिर के वार्षिक तेरह उत्सवों के लिए खर्च किया जाता था। दूसरा डिपॉजिट के ब्याज के पैसों से मंदिर कि मुख्य मूर्ति-राजराजेश्वर और दक्षिण मेरू वितनकर के लिए कपूर खरीदते थे। फिक्स्ड डिपॉजिट का ब्याज चौबीस उत्सव के दिन दास शिवयोगियों को अन्नदान के लिए उपयोग में लाया जाता था। एक उत्कीर्ण लेख के अनुसार धनगर और गोपालक लोग मंदिर के दिए जलाने के लिए घी देते थे। कितने जानवरों के दूध से घी दे देंगे इसकी विस्तृत जानकारी दी गयी है। राजा राजराजदेव के अफसर ने फिक्स्ड डिपॉजिट रखा था जिसका ब्याज पिचछदेवर की मूर्ति के लिए उपयोग में लाया जाता था। मंदिर के प्रांगण में चार बाजार थे। राजराजदेव ने इसके व्यापारियों को पैसे अमानत/ डिपॉजिट रखी थी। इसके ब्याज के बदले में वे मंदिर के पीलुयार गणपति के लिए केले देते थे। अडवाल्लू ये सर्वण नापने के लिए परिमाण था। दक्षिण में वितनकर याने अडवल्लर के मंदिर में ये परिमाण जतन किये हुए है।

मंदिर के निर्मिति में राजराजदेव के सेनापति का भी सहभाग था। उन्होंने अर्धनारीश्वर कि मूर्ति की स्थापना की थी और उसे बहुत सारे आभूषण उपहार स्वरूप दिये थे। मंदिर के व्यवस्थापक ने चार प्रमुख शैव सन्तों की मूर्ति स्थापित की थी और उनके पूजा के लिए डॉ. दिये और भस्म के लिए बर्तन भेंट दिए थे। राजराजदेव की महिषी चोलामहादेवी ने अदवलर याने शिव की मूर्ति स्थापित की और अलंकार उपहार दिये थे। उन्होंने वृषभवाहन देव याने शिव की मूर्ति, उनकी शक्ति उमापरमेश्वरी और उनके पुत्र गणपति ये तीन मूर्ति स्थापित की और उनको अलंकार भेंट दिए थे। राजराजदेव के अफसर ने भृंगीशिरास की मूर्ति स्थापित की और अलंकार भेट दिए। राजराजदेव की दूसरी पत्नी त्रैलोक्य-महादेवी ने कल्याणसुंदर शिव और उनकी पत्नी उमापरमेश्वरी और ब्रह्मा, विष्णु ये मूर्तियाँ स्थापित की और इनको आभूषण भेंट दिए थे। इस मंदिर के प्रांगण में दक्षिणमुर्ति, सूर्यदेव, विष्णू, पतंजली, पंचवन महादेवी आदि ताम्र मूर्ति स्थापित किये हैं। इस मंदिर के अभिलेखों द्वारा मंदिर का इतिहास और संस्कृति उजागर हो जाती है।

मंदिर की मूर्तियों को अनेक रत्न जड़ित आभूषण दिए जाते थे। जैसे हीरा, नीलम, मोती, माणिक, प्रवाल, पाचू, वैडूर्य जैसे रत्न होते थे। सुवर्ण के आभूषणों में रत्नों, मणि के साथ शोभा और बढ़ती थी। ये सब यही सिद्ध करता है कि मंदिर एक आर्थिक क्षेत्र का साधन था। उससे उस काल का प्रगत शास्त्र, संपत्ति, ऐश्वर्य प्रतीत होता है। तंजावूर मंदिर के अभिलेखों से मंदिर का इतिहास, सामाजिक सौहार्द, हर घटक का मंदिर व्यवस्थापन, आर्थिक आयोजन, उत्सव में सहभागिता उजागर होती है।

भारत के अगणित मंदिरों से एक तंजापुर का राजराजेश्वर मंदिर भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा आध्यात्मिक परंपरा का अनुपम उदाहरण है। ❑

पेरुवाडिया कोईल किंवा तानजूर पेरिया कोईल, बृहदीश्वर मंदिर, राजराजेश्वर मंदिर, राजेश्वरम इन नामों से बृहदेश्वर मंदिर ये मंदिर जाना जाता है। युनेस्को के विश्व धरोहर के अंतर्गत इस मंदिर का समावेश होता है। चोला राजवंश का यह मंदिर एक महत्त्वपूर्ण माना गया है। इस मंदिर निर्माण के समय चोल राजवंश संस्कृति की चरम सीमा पर थी। चोल स्थापत्य, सामाजिक, आर्थिक जीवन, राजकीय तत्त्वज्ञान, शिल्प कला, धार्मिक कर्मकांड जैसे पूजा अर्चना, उत्सव, त्यौहार, नृत्य गायनादी कला सभी का संपूर्ण चित्रण इस मंदिर और मंदिर के उत्कीर्ण लेख, मंदिर की पूजा-पद्धति आदि से प्रतीत होती है। बृहदीश्वर मंदिर संस्कृति दर्शक है।

The Mysterious and the Ever-Burning Flames : Mata Jwala Ji Temple

Prof. Suneel Kumar

Department of Commerce, Shaheed Bhagat Singh College University of Delhi

ह्रीं श्रीं क्लीं सिद्धेस्वरी ज्वालामुखी ज्रांभिनी स्थाँभिनी मोहिनी वशिकरणी परम नक्षीभीणी सर्वशत्रु निवारिणी? औं त्रें ह्रीं पाहि पाहि अक्षोभय अक्षोभय सर्वजन मम वश्यं कुरु कुरु स्वाहा।

(हे सिद्धि की स्वामिनी, ज्वालामुखी, आलस्य प्रदायिनी, ठहराव की क्रिया भाव वाली, मोह उत्पन्न करने वाली, वश में करने वाली, सभी प्रकार के विघ्नों का निवारण करने वाली, शत्रुओं का नाश करने वाली, सद्बुद्धि प्रदान करने वाली, ... रक्षा करो-2 खलबली उत्पन्न करो इसको मेरे वश मे करो-2)

The well-known Hindu shrine Jwala Ji Temple, also called Jawalamukhi Temple, is devoted to the goddess Jwala Devi. This temple holds a significant Hindu mythological importance and is located in the Kangra District of Himachal Pradesh, India. Devotees travel from all over the world to visit this temple.

Historical Background

The details regarding actual origin and historical context of the temple has not widely available and properly documented, But it is believed that this temple has been existed since centuries. The importance and age of Jwala Ji Temple are highlighted by the fact that it is mentioned in numerous Hindu scriptures and holy literature. One of the earliest mentions of the Jwala Ji Temple is found in the ancient epic Mahabharata, which recounts the events of the Kurukshetra War. According to the Mahabharata, the Pandavas, the main protagonists of the story, went to the temple to ask the goddess Jwala Devi for her blessings when they were in exile. The Skanda Purana, one of the eighteen main Hindu Puranas, also makes reference to the temple.

The Skanda Purana gives a history of the Jwala Ji Temple's beginnings and dates it to the reign of the great sage Sati. According to mythology, when Lord Shiva was in unconscious state due to death of his wife Sati who threw herself in holy altar after her father accused Lord Shiva, Lord Vishnu divided Sati's body into fifty one pieces which fell on earth at various places. These places came to known as Shakti Peeths and where Sati's tongue fell is Jwala Ji. It's believed that the Jwala (flame) coming from the temple represents the divine power of Sati, who is always there. Also, the Devi Bhagavata Purana and the

Shiva Purana both make reference to the temple. These writings shed light on the religious practises, rites, and traditions connected to Jwala Devi's temple worship.

Nine Natural Flames are burning:

In contrast to other temples, Jwala ji temple is marked by a persistent blue light that appears to emanate from the rock rather than a statue or an image. The rock upon which the temple has been erected, is erupting with flames from nine distinct locations. These nine lights are known as "Annapurna, Chandi, Hinglaj, Vindhyavasani, Mahalakshmi, Saraswati, Ambika, Anjidevi, Mahakali".

Architectural Style

Raja Bhumi Chand was the one who initially built this temple. Later, in 1835, Maharaja Ranjit Singh and Raja Sansar Chand completed the construction of this shrine. The Jwala Ji Temple has undergone numerous renovations and additions over the years by different kings and followers. A dome-shaped, gold-plated roof and a brass bell hanging above the entrance give it a distinctive architectural style. Nine perpetual flames that stand in for the goddess Jwala Devi's various manifestations are housed in the main shrine. The temple's historical significance, combined with its religious and cultural significance, have strengthened its reputation as a holy site in Hindu scriptures and in the hearts of millions of followers. Even in modern times, devotees make a substantial travel to the Jwala Ji temple for seeking blessings, healing, and spiritual experiences.

Failed Attempts of Akbar to Extinguish the Flames

After witnessing the flames in the shrine, Akbar developed a lot of doubts and made attempts to extinguish the flames. Despite countless attempts, Mughal ruler Akbar was unable to put out the flames. He tried various different methods to put out the blaze, including ordering water to be poured over them and redirecting the canal in their direction. However, none of these efforts were successful. After witnessing this miracle of the goddess , he bent down and as token of gratitude offered a golden umbrella to the goddess. But the Goddess rejected his offering, the gold umbrella fell apart and transformed into some unknown metal. To this day, no one has been able to determine what this metal is.

From this above premise the proponents of intelligent design theory emphatically infer that no such system could have come about through the gradual alteration of functioning precursor systems by means of random mutation and undirected Natural Selection as the standard evolutionary believers claim. Therefore, living organisms must have been created all concurrently with a directed intelligent design. To some it may be even by an intelligent designer.

An Unsolved Mystery

These blue flames are immaculate and has been blazing since the beginning of its recorded history. Nobody has any information about its origin. Some claim there may be a natural gas reserve there, but this cannot be verified. The Indian government has made attempts to identify the origin of this unquenchable flame. A team of eminent geologist was formed but all efforts were in vain. After that also numerous research studies were conducted by renowned Indian scientists and geologists but all have been failed. This shows that there is something more than a natural phenomenon and scientific principles which supports Jwala Ji's eternal flame. This may also be a sign of the brilliance of our forefathers. This teaches us a lesson that in the universe their exist certain super powers and human beings need not to question these powers and should respect the everlasting belief system.

Religious and Cultural Significance of Jwala Ji Temple

The Jawalamukhi Temple, commonly referred to as Jwala Ji Temple, is very important from a religious and cultural perspective in India. It is one of the most renowned Hindu temples devoted to Jwala Devi, referred as the "Flaming Goddess". The significance of Jwala Ji Temple can be summarised as follows:

Mythological Significance: Hindu mythology holds that Jwala

Devi is a manifestation of the goddess Durga.

Eternal Flame: The temple is known for its seemingly perpetual flame that burns without any fuel. The flame, which erupts from the rocks, is thought to be a representation of the goddess' heavenly endurance. It is thought to be a symbol for the goddess' influence and power.

Religious Pilgrimage: One of the 51 Shakti Peethas—holy shrines to the goddess spread out across the Indian subcontinent—is Jwala Ji Temple. As a result, it draws a sizable following of followers, particularly during the Navaratri festival when the temple is overrun with pilgrims seeking the goddess's blessings.

Historical Significance: The temple has a long history and has been mentioned in numerous ancient books and travelogues. Over time, it has undergone numerous additions and renovations.

Cultural Importance: Jwala Ji Temple is notable not just from a religious but also from cultural perspectives. It attracts individuals from different cultures and places as it holds human's faith and devotion. The temple is a notable cultural monument in the area because its building and surroundings reflect the native customs and culture.

Jwala Ji Temple is incredibly significant from a religious, mythical, and cultural perspective. It is recognised as a potent place of worship and pilgrimage, luring worshippers looking for the goddess Jwala Devi's blessings, divine intervention, and spiritual consolation.

Jwala Ji Temple and its Importance in Preserving Hinduism.

The Jwala Ji Temple contributes significantly to the preservation of Hinduism. Here are few features emphasising its importance in upholding Hinduism:

Ancient Tradition: There are several references to the Jwala Ji Temple throughout history and the scriptures. It has long served as a centre of devotion, retaining the rituals and beliefs related to the deity Jwala Devi. It guarantees the continuity of Hinduism's rich legacy by sustaining the temple and its ceremonies.

Pilgrimage Site: Jwala Ji Temple, one of the renowned Shakti Peethas, draws attraction of sizable number of people from all around India. Hindu pilgrimages to the temple give believers the chance to strengthen their ties to the religion and exclusively participate in the holy rituals and get fully immersed in its spiritual atmosphere . The ongoing influx of followers keeps the religion strong and active.

Cultural Heritage: The temple serves as both a place of worship and a representation of cultural history. It is a representation of the regional Hindu temples' architectural designs, artistic craftsmanship, and cultural practises. It helps to preserve Hindu traditions and cultural identity by maintaining the temple's physical structure and cultural relevance.

Rituals and Festivals: Hinduism is fundamentally included into the daily rites and yearly festivities observed at the Jwala Ji temple. The temple upholds the religious rituals and practises associated with Hindu worship by adhering to specified rites, prayers, and tributes to the goddess. The traditions are upheld by the dedicated and passionate observance of festivals like Navaratri, Diwali, and other significant Hindu events.

Sacred Flame: Devotees hold a high regard for the eternal flame blazing at the temple because they view it as a manifestation of God. It symbolises the grandeur and existence of the goddess Jwala Devi. This flame's preservation and ongoing blazing serve as a symbol of the temple's dedication to sustaining Hinduism's sacred and magical components.

Spiritual Guidance: Devotees seek direction, blessings, and spiritual comfort at the temple, which acts as a spiritual hub. In conducting ceremonies, giving religious education, and guiding followers, the priests and other religious leaders connected to the temple play a key role. They help to transmit and preserve Hindu religious and philosophical knowledge by their presence and lectures.

In conclusion, Jwala Ji Temple upholds rituals and festivals, safeguards cultural heritage, upholds ancient customs, protects the sacred flame, and offers spiritual advice to followers in order to preserve Hinduism. Its importance rests in preserving Hinduism and its principles for future generations, keeping the faith alive and flourishing.❑

Temples and Bharat

Dr. T.S. Girishkumar

Professor of
Philosophy (Rtd.)
MSU Baroda
(Gujarat)

The role, place, significance and importance of temples in Bharat can never be exhausted through any

Narration near sufficiency. When the essence of Bharat is the Sanskriti of Bharat which is an offshoot from the Vedopanishadic knowledge tradition, Bharatiya Mandirs were constantly and continuously the training ground of such Sanskriti apart from knowledge imparting of all area and kinds belonging to the Vedopanishadic knowledge tradition.

It really is unbelievable when we come across the Vedas and Upanishads. They have discussed almost all aspects of human knowing, that too discussed meticulously indeed. This is what makes us say that Vedas contain everything. Here, one is compelled to accept that the entire human existence for a Hindu is between two points, everything begins with the Vedas and all activities ae directed to just one goal, which is Moksha.

Areas of human knowledge

Let us simply speculate the areas of knowledge where ancient Bharatiyas had been working on. In reality, all areas can't be spoken of and discussed owing to the multiplicity and intricacies of a knowledge tradition. Nonetheless, let us simply and just speculate, knowing fully well this can't be near completion. Philosophy ventures into finding the areas, and to be on safe side, let us look at that to begin with. Europeans Had created some branches of philosophy, such as Logic, Ethics, Aesthetics and Metaphysics. Logic is one of the methods of knowing, Ethics discusses moral principles, right wrong and the like, Aesthetics discusses aspects of beauty, Art and the like, and Metaphysics discusses the transcendental dimensions of human existence. In Bharat, all these are done in unique manner which could me termed s meticulous.

For us, Logic is fundamentally "Anvikshiki" that searches for all kinds of knowledge. It is not mere arguments, or Tarka, as we draw a good difference between Tarka, Jalpa and Vidanda. Ethics of Europe is Dharma to us, and we have various Dharma Shastras. I would say that Ethics in Europe is peripherical speculation, but Dharma in Bharat is scientific and complete. When they speak of Aesthetics. We have Saundarya Shastra, and people like Abhinava Gupta, Shri Aurobindo and the like.

Bharatiya knowledge, which is the Vedopanishadic knowledge takes care of everything. Let us start with Music – Music for us is 'Nadabrahma' just another way

Albeit Buddha wantonly did not mention the Vedopanishadic knowledge tradition for his practical reasons, the knowledge they were working on and researching were essentially the Vedopanishadic knowledge only. This went on for a period well beyond a thousand of years. No wonder that Adi Shankaracharya could easily show the Buddhist scholars that the entire knowledge of theirs are Vedic. And we know the results of Shankaracharya's endeavour.

for attaining Moksha. We have identified Saptaswaras, and structured the Rg Veda in that manner to make a Sama Veda. This at once makes Sangit a method of attaining Moksha. To overcome the difficulties in pronunciation of Vedic Suktas,the Acharyas had created Mudras, which had codified the Vedic Suktas into Mudras to make a Yajurveda.

Later in time, Bharata Muni had edited these Mudras and created a science for dancing, which is called the Natya Shastra. Metaphysics as the Europeans termed is the transcendental knowledge in Bharat. There are understandings and theories of that which is beyond, which are indeed, in abundance.

The Europeans do not have absolutely any idea about our Philosophy of Yoga. Yoga philosophy is essentially a method of knowing, and what really makes it precious is that the Yogic method of knowing, known as 'Yogaj' is the method of knowing trans-sensory. Sense -object-contact experiential knowledge is otherwise known as cognitive knowledge, and the limitations of our sense organs remain as hindering the process of knowing always. It is only when modern science invented instruments those could overcome the natural limitations of sense organs that science began in Europe, nonetheless, both sense organs and scientific instruments have serious limitations, but Yogaj which is directly knowing without depending on the sense organs proves to be far advanced and accurate, and that is why Bharatiya knowledge tradition becomes accurate.

Temples

World's first University, Takshasila was in Bharat, and that was a Hindu University. Since Takshasila was in the frontier of Bharat, people could easily come from all of the world to learn there. But with the setting in of Buddhism, the Buddhist scholars created some 7 lakhs plus universities (Gurukulas) in Bharat, of smaller as well as larger sizes. In time, each University possessed distinct specialisations, where people from all over the world, those people who were searching for knowledge came here to study. I wouldn't hesitate to say that the civilisations found in the entire world, be it Egyptian, Aztec, Maya, Babylonia etc. had their basic learning in one of these Gurukulas.

Albeit Buddha wantonly did not mention the Vedopanishadic knowledge tradition for his practical reasons, the knowledge they were working on and researching were essentially the Vedopanishadic knowledge only. This went on for a period well beyond a thousand of years. No wonder that Adi Shankaracharya could easily show the Buddhist scholars that the entire knowledge of theirs are Vedic. And we know the results of Shankaracharya's endeavour.

The Hindu society did not have so many Gurukulas in abundance. Instead, the Hindu temples were the learning centre, as well as laboratories of demonstration. Basically, temples functioned as Pathsalas, where fundamentals were taught by Acharyas to begin with. Needy students could easily go up in knowledge as they wished for as well.

To mention some, temples were centres of Sanskriti and such activities. There could be music, dances, various cultural activities, intellectual discussions and debates and the like. Temples are often architectural marvels, where one could see and study many things including Kama Sutra, Jyotisha etc. the temple walls depicted all available knowledge pertaining to each temple's specialities.

We know that the Hindu Dharma preserves, protects and transmits Bharatiya Sanskriti from generations to generations. In this process, our temples function as real laboratories demonstrating everything to all. ❑

Architecture of the Temples in Gujarat

Dr. Suresh Kumar Agrawal
Professor
Central University of Gujarat, Gandhinagar

The State of Gujarat falls in the category of Nagara or North Indian style of temple architecture. Besides, the temples of Gujarat have also developed some features not found in the typical Nagara temples of Central India, such as those located at Khajuraho. During the Post-Gupta period, there was an emergence of a powerful royal house, known as Maitrakas (470- 784 CE) of Vallabhi. The style of architecture of the temples built during the aforesaid period came to be known as Maitrakas or Surashtra Style. The style is distinct for its four types of superstructures- (i) the Kutina resembling the Dravid Shikhara, (ii) the Vallabhi (wagon-vault/sala-sikhara), (iii) the Phamsana(literally wedge-shaped; stepped pyramidal), and (iv) and the Latina (single Shikhara variety with curvilinear profile). By the end of the Seventh century, the Latina Sikharas form gained popularity.

Simplicity was the marked feature of the plan and elevation of Maitraka temples. These temples consisted of the square garbha-griha with or without the mukha-mandapa. There were both Sandhara and Nirandhara temples. Some of the significant Maitraka temples include the old temples at Gop, the Vishnu temple at Kadvar, the Bilvanatha temple at Bileswar, the temple Nos 1,2, 5 & 6 at Bhanasara, temple Nos 1 & 2 at Khimesvara, temple No 1 at Ghumli and the Surya temples at Pasnavada, Srinagar and Jhamra.

Among the Maitraka temples of Gujarat, the 6th- 7th century temple of Gop, known as Zinavari Gop, in Jamnagar district of Kathiawar, shows a square sandhara vimana with steeped pyramidal (phamsana) shikhara built on a moulded adhisthana. The temple, however, does not have a frontal mandapa. The lower course of the Sikhara of this temple is decorated with two projected Chaitya-windows as nasikas and the upper course with one. The

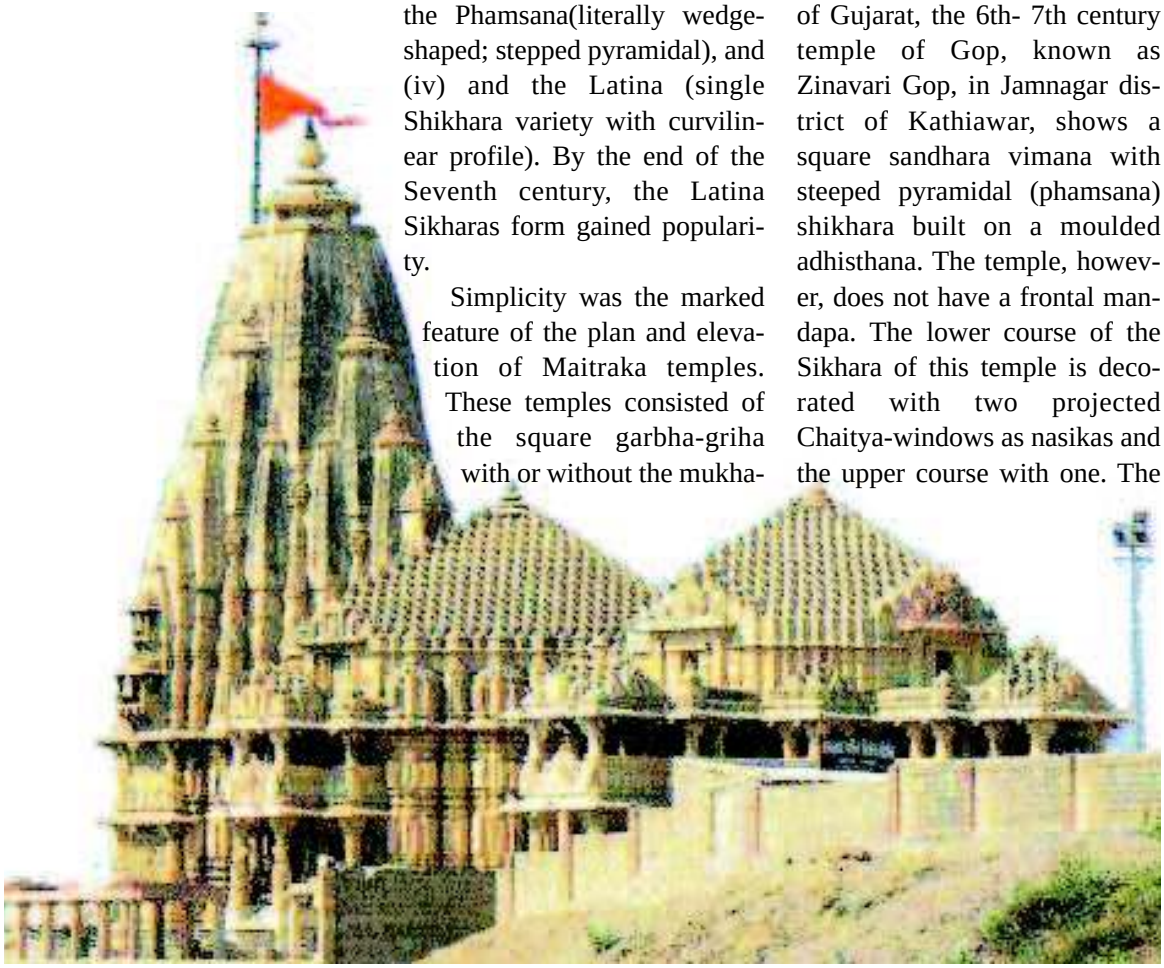

The style of architecture of the Gujarat temples built during 470-784 CE came to be known as Maitrakas or Surashtra Style. The style is distinct for its four types of super-structures- (i) the Kutina resembling the Dravid Shikhara, (ii) the Vallabhi (wagon-vault/sala-sikhara), (iii) the Phamsana(literally wedge-shaped; stepped pyramidal), and (iv) and the Latina (single Shikhara variety with curvilinear profile). By the end of the Seventh century, the Latina Sikharas form gained popularity. This architectural Style with slight changes continued to be deployed until the Muslim rulers of Delhi invaded Gujarat in 13th century and put an end to the Solanki Dynasty.

phamsana Shikhara is crowned by a Dravida type domical, finial of the Nagara type. The temple wall shows the ratha projections with deva-koshtas in between. Following the Gupta tradition, the whole temple stands on a Jagati (Platform).

Further, the development in the Maitraka architecture can be witnessed in the Vishnu temple located at Kadvar. This sandhara temple consists of a rectangular mula-prasada, a square gudha-mandapa and a mukha-mandapa. This temple also stands on a Jagati which supports the adhisthana or the pitha of the structures. These basal moldings are not elaborate and show the continuation of the Gop style. The temple is characterized by the covered Pradakshina-patha with two-tiered phamsana-roof, decorative gavakshas, the images of the Varaha and Kumara, Jala patterns and a partially decorated doorframe depicting the figures of Ganga and Yamuna at the bottom. In contrast to the Gop temple, the doorframe of this temple shows different receding jambs. The presence of the Dravidian elements such as the steeped pyramidal roof, cornice depicting the kutu motifs, covered Pradakshina Patha, Chaitya dormers and kutas of the hara element, in the Maitraka temples show that the architecture of these temples was greatly influenced by the architecture of Deccan.

The next development in the architectural style can be seen at Roda. In these temples, the developed Latina Sikharas with triratha or panchratha projections rest over the gribha-griha. Though the shikhara over the sanctum was of the Latina type, yet the superstructure over the mandapas were of pyramidal variety.

A new impetus was given to the temple architecture by the Solanki dynasty. The style that flourished in Anarta, Surashtra, Kachchha and Lata during the Solanki dynasty is termed as Maru-Gurjara Style- a mixture of Maha-Maru and Maha-Gurjara styles. The style comprises gudha-mandapa (closed hall) and a porch in front of the gudha-mandapa, like antarala of the Nagara temple. In several temples, a semi-open ranga-mandapa or nrityamandapa (dance hall) or a sabha-mandapa (assembly hall) was also added. In later temples, these mandapas were fronted by a free-standing kirti-torana (decorated entrance with its own pair of pillars) and a temple tank (kunda).

Mandovara

The term 'Mandovara' is comparatively of recent origin (only 300 years old). In the Mandovara form, the temple-wall of Maru-Gurjara temples is significant. The Mandovara has three major sections- (i) Vedibandha (a series of binding mouldings around the lower portion of the wall), (ii) Jangha (the main part of the wall) and (iii) Varandika (a series of mouldings in the form of cornices). The Vedibandha consists of (i) the Khuraka (the hoof-shaped lowest moulding where the wall proper rests), (ii) Kumbhaka (pot representing water) surmounted by small kalasa (pitcher), (iii) antarapatra (a recessed flat band with motifs) and (iv) kapotali (cornice like moulding). The vedibandha is topped by an ornate moulding, resembling the kapotali. It is called manchika which serves as pedestal for the

Jangha. The Jangha has a series of framed niche called rathikas. The rathikas bear the images of deities. A crowning element on the top of each niche is called udgama; it adds elegance to the jangha. The udgama is followed by a fluted element in the form of a pot, known as Bharani. The Bharani is topped by a projecting band known as sirspattika; it is followed by a series of cornice-mouldings, known as varandika. The Varandika is topped by a projecting Sunshade, known as Khuracchadya. The Varandika tie the temple walls with the roof.

Sikhara

The Shikhara starts on top of the varandika or cornice. Urusringas cluster about the main Shikhara of the Maru-Gurjara temples. At the base of the middle urusringa in the front row is a Rathika (niche) bearing the image of a deity. The curvilinear Shikhara is topped by a massive amalaka over which rests the Chandrika (capstone) and Kalasa (pot finial).

Gudha-mandapa

Maha-mandapa is called Gudha-mandapa in Nagara style. In some temples, the gudha-mandapa is attached to the mula-prasad. The rang-mandapa is different from the gudha-mandapa. The roof of the mandapa is either the phamsana(stepped-pyramidal) or more frequently, the Samvarana (bell-roof) class. Among the Solanki type Maru Gurjara temples, the Sun Temple at Modhera (1026-27 AD) is the most famous one. Moreover, its artistic elaboration is harmoniously blended with its architectural magnificence, very rare in Gujarat. This East facing temple, built of golden- brown sandstone stands on a broad terrace, known as the Khara-sila, made of solid brick faced with stone. The temple complex is fronted by a tank, known as tank or stepped well. It consists of several miniature shrines on its smaller steps. A broad flight of steps in the middle of the western side of the tank leads to the Kirti-toran, a decorated archway in front of the nritya-mandapal/sabha-mandapal.

The mula-prasada is of Sandhara type, that is it has a Pradakshina-Patha. The Gavakshakaras (balconied windows), projecting from the northern and southern sides of the mula-prasada, provide light and air to the Pradakshina- Patha. The Sikhara of the mula-prasada is highly damaged, though it may be assumed from the contemporary temples that the temples once had the Sekhari type of the superstructure with urusringas clustered about the base of the main sikhara. The Rudra Mala temple constructed during the time of Jayasimha Siddharaja (1094-1142) indicates that the Solanki Style architecture continued till the 12th century. It was towards the end of the 13th century that the Muslim rulers of Delhi invaded Gujarat and put an end to the Solanki dynasty as well as their magnificent architectural activities.❑

Early Childhood care and Education in the Light of National Curriculum Framework for Foundational Stage

Dr. Pawan Kumar
Principal, A.S college of Education, Kalal- Majra, Khanna (Punjab)

The National Education Policy (NEP) 2020 is a transformative initiative to usher India to prepare itself to meet the challenging demands of a 21st century knowledge society. The NCF is one of the key components of NEP 2020 that enables and energizes this transformation, informed by the aims, principles, and approach of NEP 2020. Its objective is to realise the highest quality education for all our children, consistent with realising an equitable, inclusive, and plural society as envisaged by our Constitution.This is the first ever integrated Curriculum Framework for children between ages 3-8 in India. It is a direct outcome of the 5+3+3+4 'curricular and pedagogical' structure that NEP 2020 has come out with for School Education.The Foundational Stage envisions an integrated approach to Early Childhood Care and Education; for children between ages 3-8. The transformative nature of this phase of education is expected to qualitatively improve the contents and outcomes of education, thereby, impacting the lives of our children towards a better future. This NCF is based on cutting-edge research from across the world in multiple disciplines which includes among other things better understanding in the fields of neurosciences, brain study, and cognitive sciences. Further, the accumulated insights from the practice of Early Childhood Care and Education, and the wisdom and knowledge from diverse Indian traditions are also important considerations. As articulated in NEP 2020, it uses 'play,' at the core of the conceptual, operational, and transactional approaches to curriculum organization, pedagogy, time and content organization, and the overall experience of the child. It also lays a clear path for the goal of achieving foundational literacy and numeracy as articulated in NEP 2020, with age-appropriate strategies.To ensure that this NCF is responsive to the needs and aspirations of our people, and the nation, and is also informed by the very best experience and knowledge, we have conducted widespread consultations across the country.

National Curriculum Framework

The National Curriculum Framework (NCF) for the Foundational Stage is developed

based on the vision of the National Education Policy (NEP) 2020, and to enable its implementation.The Foundational Stage refers to children in the age group of 3 to 8 years, across the entire range of diverse institutions in India. This is the first Stage in the 5+3+3+4 Curricular and Pedagogical restructuring of School Education as envisioned in NEP 2020.

Objectives of this NCF

The overarching objective of this NCF is to help in positively transforming the school education system of India as envisioned in NEP 2020, through corresponding positive changes in the cur ricu-lum including pedagogy. In particular, the NCF aims to help change practices in education and not just ideas; indeed, since the word 'curriculum' encapsulates the overall experiences that a student has in school, 'practices' do not just refer to curricular content and pedagogy, but also include school environment and culture. It is this holistic overall transformation of the curriculum that will enable us to positively transform overall learning experiences for students.

Overall Guiding Principles in NEP 2020

NEP 2020 states that the purpose of education is to develop good human beings capable of ratio- nal thought and action, possessing compassion and empathy, courage and resilience, scientific temper, and creative imagination, with sound ethical moorings and values. It aims at producing engaged, productive, and contributing citizens for building an equitable, inclusive, and plural society as envisaged by our Constitution.

A good educational institution is one in which every student feels welcomed and cared for, where a safe and stimulating learning environment exists, where a wide range of learning experiences are offered, and where good physical infrastructure and appropriate resources conducive to learning are available to all students. Attaining these qualities must be the goal of every educational institution. However, at the same time, there must also be seamless integration and coordination across institutions and across all Stages of education.

The main guiding principles in NEP 2020 are:

Recognizing, identifying, and fostering the unique capabilities of each student, by sensitizing Teachers as well as parents to promote each student's holistic development in both academic and non-academic spheres.

According to the highest priority to achieving Foundational Literacy and Numeracy by all students by Grade 3.

The National Education Policy 2020 acknowledges the need to revitalize the Indian education system by emphasizing Indian knowledge systems, languages, arts, and culture. It recognizes that curriculum and pedagogy must be redesigned to be strongly rooted in the Indian and local context and ethos, encompassing culture, traditions, heritage, customs, language, philosophy, geography, ancient and contemporary knowledge, societal and scientific needs, as well as indigenous and traditional ways of learning.

Flexibility, so that learners have the ability to choose their learning trajectories and programmes, and thereby choose their own paths in life according to their talents and interests.

No hard separations between arts and sciences, between curricular and extra-curricular activities, between vocational and academic streams, etc. in order to eliminate harmful hierarchies among, and silos between different areas of learning.

Multidisciplinary and holistic education across the sciences, social sciences, arts, humanities, and sports for a multidisciplinary world in order to ensure the unity and integrity of all knowledge.

Emphasis on conceptual understanding rather than rote learning and learning for examinations.

Conceptual understanding, problem-solving, creativity, and critical thinking to encourage logical decision-making and innovation.

Ethics and human and Constitutional values like empathy, respect for others, cleanliness, courtesy, democratic spirit, spirit of service, respect for public property, scientific temper, liberty, responsibility, pluralism, equality, and justice.

Promoting multilingualism and the power of language in teaching and learning. Life skills such as communication, cooperation, teamwork, and resilience. Focus on regular formative assessment for learning rather than the summative assessment

that encourages today's 'coaching culture.' Extensive use of technology in teaching and learning, removing language barriers, increasing access for Divyang students, and educational planning and management. Respect for diversity and respect for the local context in all curriculums, pedagogy, and policy, always keeping in mind that education is a concurrent subject.

Full equity and inclusion as the cornerstone of all educational decisions to ensure that all students are able to thrive in the education system. Synergy in curriculum across all levels of education from early childhood care and education to school education to higher education. Teachers and faculty as the heart of the learning process - their recruitment, continuous professional development, positive working environments, and service conditions.

'Light but tight' regulatory framework to ensure integrity, transparency, and resource efficiency of the educational system through audit and public disclosure while encouraging innovation and out-of-the-box ideas through autonomy, good governance, and empowerment.

Outstanding research as a corequisite for outstanding education and development. Continuous review of progress based on sustained research and regular assessment by educational experts. Rootedness and pride in India, and its rich, diverse, ancient, and modern culture andknowledge systems and traditions. Education is a public service; access to quality education must be considered a basic right of every child.

Early Childhood Care and Education

The first eight years of a child's life are truly critical and lay the foundation for lifelong well-be- ing, and overall growth and development across all dimensions - physical, cognitive, and socio-emotional.Indeed, the pace of brain development in these years is more rapid than at any other stage of a person's life. Research from neuroscience informs us that over 85% of an individual's brain development occurs by the age of 6, indicating the critical importance of appropriate care and stimulation in a child's early years to promote sustained and healthy brain development and growth.

The most current research also demonstrates that children under the age of 8 tend not to follow linear, age-based educational trajectories. It is only at about the age of 8 that children begin to converge in their learning trajectories. Even after the age of 8, non-linearity and varied pace con- tinue to be inherent characteristics of learning and development; however, up to the age of 8, the differences are so varied that it is effective to view the age of 8, on average, as a transition point from one stage of learning to another. In particular, it is only at about the age of 8 that children begin to adapt to more structured learning.Early Childhood Care and Education (ECCE) is thus generally defined as the care and educationof children from birth to eight years.

Foundational Stage

(a) Primarily at home: Ages 0-3

Up to 3 years of age, the environment in which most children grow up is in the home with families, while some children do go to crèches. After the age of 3, a large proportion of children spend significant time in institutional settings such as Anganwadis and preschools. Pro- viding high quality preschool education in an organised setting for children above 3 years of age is one of the key priorities of NEP 2020.

Up to age 3, the home environment is (and should remain) almost the sole provider of adequate nutrition, good health practices, responsive care, safety and protection, and stimulation for early childhood learning i.e., everything that constitutes and forms the basis for ECCE. After the age of 3, these components of nutrition, health, care, safety, and stimulation must continue at home, and must also be ensured in an appropriate and complementary manner in institutional settings such as Anganwadis and preschools.

Appropriate ECCE at home for children under the age of 3 includes not only health, safety, and nutrition, but also crucially includes cognitive and emotional care and stimulation of the infant through talking, playing, moving, listening to music and sounds, and stimulating all the other senses particularly sight and touch so that at the end of three years, optimal develop- mental outcomes are attained, in various development domains, including physical and mo- tor, socio-emotional, cognitive, communication, early language, and emergent literacy and numeracy. It must be noted that these domains are overlapping and indeed deeply interdependent.

(b) In institutional settings: Ages 3-8

During the ages of 3 to 8, appropriate and high-quality ECCE provided in institutional environ- ments must be available to all children. In India, where available, this is typically carried out as follows:

3-6 years: Early childhood education programmes in Anganwadis, Balvatikas, or preschools.

6-8 years: Early primary education programmes in school (Grades 1 and 2).

From 3 to 8 years of age, ECCE includes continued attention to health, safety, care, and nutrition; but also, crucially, self-help skills, motor skills, hygiene, the handling of separation anxiety, physical development through movement and exercise, expressing and communicating thoughts and feelings to parents and others, being comfortable around one's peers, sitting for longer periods of time in order to work on and complete a task, ethical development, and forming all-round good habits.

Supervised play-based education, in groups and individually, is particularly important during this age range to nurture and develop the child's innate abilities and capacities of curiosity, creativity, critical thinking, cooperation, teamwork, social interaction, empathy, compassion, inclusiveness, communication, cultural appreciation, playfulness, awareness of the immediate environment, as well as the ability to successfully and respectfully interact with teachers, fellow students, and others.

(C) Importance of literacy and numeracy

ECCE during these years also entails the development of early literacy and numeracy, including learning about the alphabet, languages, numbers, counting, colours, shapes, drawing/ painting, indoor and outdoor play, puzzles and logical thinking, art, craft, music, and movement. The aim is to build on the developmental outcomes in the domains mentioned above, combined with a focus on early literacy, numeracy, and awareness of one's environment. This becomes particularly important during the age range of 6-8, forming the basis for achieve- ment of Foundational Literacy and Numeracy (FLN). The importance of FLN to overall education is well-understood, and fully emphasized in NEP 2020.

(D) National Curriculum Framework for the Foundational Stage (NCF)

Considering all of the above, NEP 2020 has articulated the age range of 3-8 as the Foundation- al Stage, in the new 5+3+3+4 system.This National Curriculum Framework aims to address the Foundational Stage in institutionalsettings, within the overall context of ECCE.While this NCF has an institutional focus, the importance of the home environment cannot be overemphasized - including family, extended family, neighbours, and others in the close com- munity - all of whom have a very significant impact on the child, particularly in this age range. Hence, this NCF will deal with the role of parents and communities in enabling and enhancing the developmental outcomes that are sought during this stage; it will not, however, deal in detail with aspects of ECCE for ages prior to 3 years, which is entirely outside institutional settings.

Conclusion

The NCF is one of the key components of NEP 2020 that enables and energizes this transformation informed by the aims, principles and approach of NEP 2020. Its objective is to realise the highest quality education for all our children, consistent with realizing an equitable, inclusive, and plural society as envisaged by our Constitution.The Foundational Stage envisions an integrated approach to Early Childhood Care and Education; for children between ages 3-8. The transformative nature of this phase of education is expected to qualitatively improve the contents and outcomes of education, thereby, impacting the lives of our children towards a better future. This NCF is based on cutting-edge research from across the world in multiple disciplines which includes among other things better understanding in the fields of neurosciences, brain study, and cognitive sciences. Further, the accumulated insights from the practice of Early Childhood Care and Education and the wisdom and knowledge from diverse Indian traditions are also important considerations. We believe that any such framework must be improved with feedback from implementation onthe ground, and that we shall do, after a reasonable experience of its implementation. We are grateful for the opportunity to contribute to Indian education and through that to the country. ❑

समान नागरिक संहिता : क्या और क्यों ?

नारायण लाल गुप्ता
प्रोफेसर भौतिक शास्त्र,
राजकीय महाविद्यालय
किशनगढ़ (राज.)

भारत के विधि आयोग ने हाल ही में समान नागरिक संहिता के संबंध में सार्वजनिक और धार्मिक संगठनों सहित विभिन्न हितधारकों से सुझाव आमंत्रित किए हैं। इसके साथ ही इस विषय पर चर्चा और विवाद फिर से समाज के पटल पर उभर कर आए हैं। समान नागरिक संहिता का विरोध नया नहीं है लेकिन संविधान सभा की बहस, संविधान में इसके प्रावधान और उच्चतम व विभिन्न उच्च न्यायालयों के निर्णय जो कहानी बयान करते हैं, उसको व्यापक देश हित में ठीक प्रकार समझना जरूरी है।

समान नागरिक संहिता क्या है ?

समान नागरिक संहिता पंथनिरपेक्ष व्यक्तिगत कानूनों को तैयार करने और लागू करने का एक प्रस्ताव है जो सभी भारतीय नागरिकों पर समान रूप से लागू होता है, चाहे उनका धर्म/पंथ कुछ भी हो। व्यक्तिगत कानून सार्वजनिक कानून से अलग हैं और विवाह, तलाक, उत्तराधिकार, गोद लेने और गुजारे आदि को कवर करते हैं। वर्तमान में, विभिन्न समुदायों के व्यक्तिगत कानून उनके धार्मिक ग्रंथों/ अलग कानून द्वारा शासित होते हैं, जिसका अर्थ है कि प्रत्येक नागरिक और उनके नागरिक मामलों के सम्बंध में कानून के समक्ष अलग-अलग तरह से व्यवहार किया जाता है।

समान नागरिक संहिता संविधान के अनुच्छेद 44 के तहत शामिल है जो यह घोषणा करता है कि राज्य नागरिकों को एक समान नागरिक संहिता सुनिश्चित करने की कोशिश करेगा। भारतीय संविधान के चतुर्थ अध्याय में अनुच्छेद 36 से 51 तक राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्तों का प्रावधान है, जिन्हें अनुच्छेद 38 द्वारा नींव का पत्थर घोषित किया गया है। अनुच्छेद 37 में यद्यपि इन निर्देशक सिद्धांतों को वाद-निरपेक्ष माना गया है अर्थात् इनको लागू न करने पर न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती किन्तु इसी अनुच्छेद में यह भी घोषणा की गई है कि ये निर्देशक सिद्धांत देश के शासन में मूलभूत आधार हैं और कानून बनाने में इन सिद्धांतों का प्रयोग करना राज्य का कर्तव्य होगा।

इतिहास

ब्रिटिश सरकार ने वर्ष 1835 में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की थी, जिसमें अपराधों, सबूतों और अनुबंधों जैसे अनेक विषयों पर भारतीय कानून के संहिताकरण में एकरूपता लाने की आवश्यकता पर बल दिया गया। लेकिन इस रिपोर्ट में हिंदू और मुसलमानों के व्यक्तिगत कानूनों को इस एकरूपता से बाहर रखने की सिफारिश की गई थी। आजादी के बाद नेहरू सरकार हिंदू कोड बिल लेकर आई और 1955 में हिंदू मैरिज एक्ट, 1956 में ही हिंदू उत्तराधिकार अधिनियम, हिंदू दत्तक ग्रहण और पोषण अधिनियम और हिंदू अवयस्कता और संरक्षकता अधिनियम अस्तित्त्व में आया। हिंदुओं के लिए बनाए गए कोड के दायरे में सिखों, बौद्ध और जैन धर्म के अनुयायियों को भी लाया गया। दूसरी तरफ भारत में मुस्लिम, ईसाई और पारसियों के शादी-ब्याह, तलाक और उत्तराधिकार के मामलों का फैसला अलग-अलग व्यक्तिगत कानून से होता रहा। आज के समय में भारतीय कानून विवाह, तलाक, उत्तराधिकार जैसे मामलों को छोड़कर ज्यादातर नागरिक मामलों में एक समान कोड का पालन करते हैं जैसे कि भारतीय अनुबंध अधिनियम 1872, नागरिक प्रक्रिया संहिता, संपत्ति हस्तांतरण अधिनियम 1882, भागीदारी अधिनियम 1932, साक्ष्य अधिनियम, 1872 आदि। हालांकि इन कानूनों में राज्यों ने कई संशोधन किये हैं, इसलिए कुछ मामलों में इन नागरिक कानूनों के तहत भी भारत के अलग-अलग राज्यों में विविधता देखने को मिलती है।

संविधान सभा में बहस

23 नवंबर, 1948 को संविधान सभा में इस मुद्दे पर विस्तार से चर्चा हुई। अनुच्छेद 35 जिसमें देश में समान नागरिक संहिता होने से संबंधित प्रावधान शामिल थे, को लेकर कई संशोधनों के प्रस्ताव दिए गए। प्रस्ताव देने वालों में मुहम्मद इस्माइल, नजीरुद्दीन अहमद, महबूब अली बेग साहिब बहादुर, हुसैन इमाम आदि सदस्य थे जिन्होंने इन संशोधनों को पेश किया। इनके तर्कों का प्रतिवाद डॉ. बी.आर. अंबेडकर, के.एम. मुंशी और अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर द्वारा प्रस्तुत किया गया था।

नज़ीरुद्दीन अहमद का कहना था - ''मेरा निवेदन है कि इन कानूनों के साथ हस्तक्षेप समय की गति के साथ-साथ धीरे-धीरे होना चाहिए। मुझे कोई संदेह नहीं है कि एक समय ऐसा आयेगा, जब नागरिक-संहिता एक समान होगी। लेकिन अभी वह समय नहीं आया है।'' ईमाम हुसैन ने भी इसे सिरे से खारिज नहीं किया - ''महोदय, मैं अनुभव करता हूँ कि समान-कानून-व्यवस्था उचित भी है और वांछनीय भी। परन्तु आज इसे नहीं लाया जा सकता।''

के.एम. मुंशी ने इस बहस में हिस्सा लेते हुए कहा – ''मैं जानता हूँ कि हिन्दुओं में भी अनेक लोग हैं, जो पूर्व वक्ता माननीय मुसलमान सदस्यों की तरह ही समान नागरिक संहिता नहीं चाहते। वे सोचते हैं कि उत्तराधिकार विरासत आदि के निजी कानून वास्तव में उनके धर्म के अंग हैं। अगर ऐसा होता, तो हम कभी समानता का अधिकार उदाहरणार्थ महिलाओं को नहीं दे सकते। लेकिन इस सभा ने इस संबंध में मूलभूत अधिकार का प्रावधान किया है, जिसके अन्तर्गत लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता।''

प्रस्ताव के समर्थन में मद्रास के अल्लादि कृष्णास्वामी अय्यर का कहना था – ''हमारे सामने सवाल यह है कि क्या हम उन बातों को बढ़ावा देना चाहते हैं जो इस राष्ट्र को एकीकृत करेंगी अथवा क्या यह देश सदा विभिन्न समुदायों की प्रतिस्पर्धा का अखाड़ा ही बना रहेगा? जब अंग्रेजों ने इस देश पर कब्जा किया तो उन्होंने कहा कि वे देश में समान फौजदारी कानून लागू करेंगे जो अंग्रेजों, हिन्दुओं, मुसलमानों पर लागू होगा। क्या एक समान फौजदारी कानून लागू करने के ब्रिटिश फैसले के खिलाफ उन्होंने विद्रोह किया? इस तरह से एक समझौता-कानून है, जिसके अंतर्गत मुसलमान और हिन्दू एवं मुसलमान और मुसलमानों के बीच होने वाले सौदे आते हैं। वे कुरान के अनुसार नहीं वरन् आंग्ल-भारतीय विधिशास्त्र के अनुसार शासित होते हैं। लेकिन इसका विरोध नहीं किया गया कि यह हमने अंग्रेजी विधि-शासन से उधार लिया है।''

इस बैठक में प्रस्ताव को देश हित में बताते हुए बाबा साहब अम्बेडकर का कहना था – ''मेरे जिन मित्रों ने इस संशोधन पर विचार रखे हैं वे भूल गये कि 1935 तक उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत में शरीअत का कानून लागू नहीं था। उत्तराधिकार व अन्य मामलों में वहाँ हिन्दू कानून का पालन होता था। केवल यही नहीं, मेरे माननीय मित्र यह भी भूल रहे हैं कि उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत के अलावा 1937 तक भारत के बाकी कई हिस्सों, जैसे कि संयुक्त प्रांत, मध्य प्रांत व बम्बई में, मुसलमानों पर उत्तराधिकार के मामले में एक बड़ी हद तक हिन्दू उत्तराधिकार कानून ही लागू होता था। मेरे मित्र करुणाकरन मेनन ने मुझे बताया है कि उत्तरी मलाबार क्षेत्र में मरुमाक्कथयम कानून हिन्दू, मुसलमानों सभी पर समान रूप से लागू होता है। इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि मरुमाक्कथयम कानून मातृ प्रधान समाज का कानून है न कि पितृ प्रधान कानून। उत्तरी मलाबार क्षेत्र में मुसलमान अब तक मरुमाक्कथयम कानून का पालन करते रहे हैं। इसलिए इस बयान से कोई लाभ नहीं कि मुस्लिम कानून अपरिवर्तनीय है, जिसका अनुसरण वे प्राचीन काल से ही करते चले आ रहे हैं।''

प्रमुख न्यायिक निर्णय और टिप्पणियाँ

इंदौर की रहने वाली शाहबानो 62 साल की थीं, जब उनके तीन तलाक का मामला सुर्खियों में आया। शाहबानो के 5 बच्चे थे। उनके पति ने 1978 में उन्हें तलाक दिया था। पति से गुजारा भत्ता पाने का मामला 1981 में सुप्रीम कोर्ट पहुँचा। पति का कहना था कि वह शाहबानो को गुजारा भत्ता देने के लिए बाध्य नहीं है। सुप्रीम कोर्ट ने 1985 में सीआरपीसी की धारा-125 पर फैसला दिया, यह धारा तलाक के केस में गुजारा भत्ता तय करने से जुड़ी है। सुप्रीम कोर्ट ने शाहबानो को बढ़ा हुआ गुजारा भत्ता देने के मध्य प्रदेश हाईकोर्ट के फैसले को बरकरार रखा। जब देश में इसका विरोध हुआ तो उस वक्त की राजीव गाँधी सरकार ने 1986 में एक कानून बनाया। यह कानून द मुस्लिम वुमन प्रोटेक्शन ऑफ राइट्स एक्ट 1986 कहलाया। इसने सुप्रीम कोर्ट के फैसले को डाइल्यूट कर दिया। कानून के तहत महिलाओं को सिर्फ इद्दत (सेपरेशन के वक्त) के दौरान ही गुजारा भत्ता मांगने की इजाजत मिली।

के.एम. मुंशी ने इस बहस में हिस्सा लेते हुए कहा – ''मैं जानता हूँ कि हिन्दुओं में भी अनेक लोग हैं, जो पूर्व वक्ता माननीय मुसलमान सदस्यों की तरह ही समान नागरिक संहिता नहीं चाहते। वे सोचते हैं कि उत्तराधिकार विरासत आदि के निजी कानून वास्तव में उनके धर्म के अंग हैं। अगर ऐसा होता, तो हम कभी समानता का अधिकार उदाहरणार्थ महिलाओं को नहीं दे सकते। लेकिन इस सभा ने इस संबंध में मूलभूत अधिकार का प्रावधान किया है, जिसके अन्तर्गत लिंग के आधार पर भेदभाव नहीं किया जा सकता।''

इस केस में अपने निर्णय में सुप्रीम कोर्ट ने कहा – ''यह भी खेद का विषय है कि हमारे संविधान का अनुच्छेद 44 मृत प्राय: हो गया है। देश के लिए एक समान नागरिक संहिता रचने के लिए किसी प्रकार की सरकारी सक्रियता का कोई साक्ष्य नहीं है। इस मुकदमे में एक वकील की फुसफुसाहट (जो थोड़ी बहुत सुनी गयी) है कि वैधानिक योग्यता होना एक बात है, परन्तु इस योग्यता को प्रयोग करने का राजनीतिक साहस एकदम दूसरी बात है। विभिन्न विश्वासों और मतावलम्बियों को एक समान मंच पर लाने में आने वाली मुश्किलों को हम समझते हैं। लेकिन, यदि संविधान होने का कोई अर्थ है, तो इस दिशा में शुरुआत होनी ही चाहिए।''

सरला मुदगल केस में हिंदू पति ने पत्नी को तलाक दिए बिना ही इस्लाम कबूल किया और दूसरी शादी कर ली, इससे दूसरी शादी की कानूनी मान्यता पर सवाल उठे। इस पर सुप्रीम कोर्ट ने कहा कि हिंदू मैरिज एक्ट, 1955 के तहत हुई शादी रद्द तभी मानी जाएगी, जब कानून के तहत ही उसे खत्म किया जाए। 1995 में सरला मुदगल केस में सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय देते हुए कहा- ''संविधान के अनुच्छेद 44 के अंतर्गत व्यक्त की गई संविधान निर्माताओं की इच्छा को पूरा करने में सरकार और कितना समय लेगी? उत्तराधिकार और विवाह को संचालित करने वाले परंपरागत हिंदू कानून को बहुत पहले ही 1955-56 में संहिताकरण करके अलविदा कर दिया गया है। देश में समान नागरिक संहिता को अनिश्चित काल के लिए निलंबित करने का कोई औचित्य नहीं है। कुछ प्रथाएँ मानवाधिकार एवं गरिमा का अतिक्रमण करते हैं। धर्म के नाम पर मानव अधिकारों का गला घोटना स्वराज्य नहीं बल्कि निर्दयता है, इसलिए एक समान नागरिक संहिता का होना निर्दयता से सुरक्षा प्रदान करने और राष्ट्रीय एकता एवं अखंडता को मजबूत करने के लिए नितांत आवश्यक है।''

जॉन वल्लमट्टम केस में, केरल के जॉन वल्लमट्टम ने भारतीय उत्तराधिकार अधिनियम की धारा 118 की संवैधानिक वैधता को चुनौती देते हुए तर्क दिया कि यह धारा ईसाइयों के खिलाफ भेदभावपूर्ण थी क्योंकि यह उनकी इच्छा से धार्मिक या धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए संपत्ति के दान पर अनुचित प्रतिबंध लगाता है। कोर्ट ने इसे अनुचित मान कर इस धारा को असंवैधानिक करार दिया। सुप्रीम कोर्ट ने जॉन वल्लमट्टम केस के निर्णय में कहा- ''यह दु:ख की बात है कि संविधान के अनुच्छेद 44 को आज तक लागू नहीं किया गया, संसद को अभी भी देश में एक समान नागरिक संहिता लागू के लिए कदम उठाना है। समान नागरिक संहिता वैचारिक मतभेदों को दूर कर देश की एकता-अखंडता को मजबूत करने में सहायक होगी।''

2017 में सायरा बानो केस में सर्वोच्च न्यायालय ने भारत में तीन तलाक को असंवैधानिक घोषित करते हुए कहा, ''हम भारत सरकार को निर्देशित करते हैं कि वह उचित विधान बनाने पर विचार करें। हम आशा एवं अपेक्षा करते हैं कि वैश्विक पटल पर और इस्लामिक देशों में शरीअत में हुए सुधारों को ध्यान में रखते हुए एक कानून बनाया जाएगा। जब ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीय दंड संहिता के माध्यम से सबके लिए एक कानून लागू किया जा सकता है तो भारत के पीछे रहने का कोई कारण नहीं है।''

2019 में जोस पाउलो केस में सर्वोच्च न्यायालय ने फिर कहा कि समान नागरिक संहिता को लेकर सरकार की तरफ से अब तक कोई प्रयास नहीं किया गया। अदालत ने अपने टिप्पणी में गोवा का उदाहरण दिया और कहा- ''1956 में हिंदू लॉ बनने के 63 साल बीत जाने के बाद भी पूरे देश में समान नागरिक संहिता लागू करने के लिए कोई गंभीर प्रयास नहीं किया गया।''

समान नागरिक संहिता (वन नेशन वन सिविल कोड) क्यों ?

समान नागरिक संहिता के खिलाफ मुख्य तर्क यह है कि यह 'पंथ निरपेक्षता' के सिद्धांत का उल्लंघन करेगा। समान नागरिक संहिता के विरोधी इसे एक ऐसे उपकरण के रूप में देखते हैं जिसके द्वारा राज्य, अनुच्छेद 25 और 26 के तहत दिए गए ''धर्म की स्वतंत्रता के अधिकार में हस्तक्षेप करने की कोशिश करता है। किंतु अनुच्छेद 44 का उद्देश्य व्यक्ति और भगवान के बीच संबंध को बाधित करना नहीं है बल्कि इसका उद्देश्य स्वयं मनुष्यों के बीच के विवादों को हल करना है।'' जैसा कि सुप्रीम कोर्ट ने एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ मामले में कहा है कि, ''धर्म व्यक्तिगत आस्था का मामला है और इसे पंथनिरपेक्ष गतिविधियों के साथ नहीं मिलाया जा सकता है, पंथ निरपेक्ष गतिविधियों को कानून बनाकर राज्य द्वारा नियंत्रित किया जा सकता है।''

समान नागरिक संहिता वास्तव में पंथ निरपेक्षता हासिल करने का एक माध्यम है। यह एक ऐसे समाज का निर्माण करने का इरादा रखता है जहाँ पंथों के बीच कोई भेदभाव न हो, लेकिन व्यक्तिगत और पारिवारिक मामलों में समानता हो। समान नागरिक संहिता किसी भी मामले में किसी मुसलमान को 'सप्तपदी' या हिंदू को 'निकाह' करने के लिए मजबूर नहीं करता, धार्मिक प्रथाओं और विश्वासों सुरक्षित रहेंगे, केवल वे मामले जो विभिन्न पांथिक समूहों के बीच मतभेद या भेदभाव पैदा करते हैं, संहिता द्वारा शासित होंगे। समान नागरिक संहिता लागू होने से आर्टिकल 25 के अंतर्गत प्राप्त मूलभूत धार्मिक अधिकार जैसे पूजा, नमाज या प्रार्थना करने, व्रत या रोजा रखने तथा मन्दिर, मस्जिद, चर्च, गुरुद्वारा का प्रबंधन करने या धार्मिक स्कूल खोलने, धार्मिक शिक्षा का प्रचार-प्रसार करने या विवाह-निकाह की कोई भी पद्धति अपनाने या मृत्यु पश्चात अंतिम संस्कार के लिए कोई भी तरीका अपनाने में किसी भी तरह का हस्तक्षेप नहीं होगा।

अमरीका व अन्य पश्चिमी देशों में पूर्णतया समान नागरिक संहिता लागू है, जहाँ बड़ी संख्या में मुसलमान व अन्य अल्पसंख्यक वर्गों के लोग रहते हैं। अनेक प्रगतिशील मुस्लिम देशों यथा मिस्र, सीरिया, तुर्की, मोरक्को, इंडोनेशिया व मलेशिया, यहाँ तक कि पाकिस्तान में भी बहुपत्नीवाद, मौखिक तलाक तथा पुरुष-प्रधान उत्तराधिकार आदि के मामलों में भेदभावपूर्ण व दमनकारी कानून बदल दिए गए हैं और उनको उदार व मानवीय बनाया गया है।

भारतीय दंड संहिता (वन नेशन-वन पीनल कोड) की तर्ज पर देश के सभी नागरिकों के लिए एक भारतीय नागरिक संहिता (वन नेशन-वन सिविल कोड) लागू होने से देश और समाज को सैकड़ों जटिल, बेकार और पुराने कानूनों से मुक्ति मिलेगी। वर्तमान समय में अलग-अलग मत के लिए लागू अलग-अलग ब्रिटिश कानूनों से सबके मन में हीन भावना पैदा होती है इसलिए सभी नागरिकों के लिए एक 'भारतीय नागरिक संहिता' लागू होने से सबको हीन भावना से मुक्ति मिलेगी।

'एक पति-एक पत्नी' की अवधारणा सभी भारतीयों पर एक समान रूप से लागू होगी और बांझपन या नपुसंकता जैसे अपवाद का लाभ सभी भारतीयों को एक समान रूप से मिलेगा चाहे वह पुरुष हो या महिला, हिंदू हो या मुसलमान, पारसी हो या ईसाई। न्यायालय के माध्यम से विवाह-विच्छेद करने का एक सामान्य नियम सबके लिए लागू होगा। विशेष परिस्थितियों में मौखिक तरीके से विवाह विच्छेद करने की अनुमति भी सभी नागरिकों को होगी, चाहे वह पुरुष हो या महिला, हिंदू हो या मुसलमान, पारसी हो या ईसाई।

पैतृक संपति में पुत्र-पुत्री तथा बेटा-बहू को एक समान अधिकार प्राप्त होगा चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, पारसी हो या ईसाई और संपति को लेकर पंथ, जाति, क्षेत्र और लिंग आधारित विसंगति समाप्त होगी। विवाह-विच्छेद की स्थिति में विवाहोपरांत अर्जित संपति में पति-पत्नी को समान अधिकार होगा, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, पारसी हो या ईसाई। वसीयत, दान, संरक्षकत्व, बंटवारा, गोद इत्यादि के संबंध में सभी भारतीयों पर एक समान कानून लागू होगा, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, पारसी हो या ईसाई और पंथ, जाति, क्षेत्र, लिंग आधारित विसंगति समाप्त होगी। राष्ट्रीय स्तर पर एक समग्र एवं एकीकृत कानून मिल सकेगा और सभी नागरिकों के लिए समान रूप से लागू होगा, चाहे वह हिंदू हो या मुसलमान, पारसी हो या ईसाई।

कुल मिलाकर समान नागरिक संहिता संविधान में किया हम सबका वादा है जो किसी धर्म या पंथ के प्रतिकूल नहीं बल्कि मूलभूत मानवाधिकारों, लैंगिक समानता, स्त्री अधिकारों, पंथ निरपेक्षता और राष्ट्रीय एकता के संविधानिक मूल्यों को सुनिश्चित करने वाला है। ❑

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा

डॉ. सुमन बाला
सह आचार्य,
हरिभाउ उपाध्याय महिला शिक्षक महाविद्यालय,
हटूंडी, अजमेर (राज.)

5. विद्यालय शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा (प्री ड्राफ्ट)- 2023

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2023 की यह रूपरेखा प्री ड्राफ्ट राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के दृष्टि (विजन) पर आधारित है जो इसकी क्रियान्वित को सक्षम बनाने की दिशा में कार्य करेगी। यह 3 से 18 वर्ष के बालकों की 4 अवस्थाओं में 5+3 +3+4 के पाठ्यचर्या और शिक्षण शास्त्रीय पुनर्रचना को स्कूल शिक्षा के संदर्भ में निर्देशित करती है। इस दस्तावेज के 25 राष्ट्रीय फोकस समूह स्थिति पेपर (पोजीशन पेपर्स) के द्वारा इस दस्तावेज की स्थिति को स्पष्ट करने का में मदद करेंगे।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा का यह दस्तावेज 5 भागों में बटा हुआ है जिसका विवरण निम्नानुसार है -

1. भाग A उपागम- इसमें शिक्षा के लक्ष्य और पाठ्यचर्या क्षेत्र, विद्यालय अवस्थाएँ और सीखने के मानदंडों के उपागम जिसमें विषयवस्तु, शिक्षण शास्त्र, उपागम आकलन के उपागम और समय आवंटन चित्रण दिया गया है।

विद्यालय शिक्षा में मानवीय क्षमताओं का विकास, स्कूल शिक्षा में पूर्ण मानव क्षमता मूल्यों और स्वभाव का विकास, स्कूल शिक्षा में पाठ्यचर्या और शिक्षण शास्त्रीय संरचना सीखने के मानदंडों, सभी विषयों और सीखने के पक्षों का समान स्तर पर समेकन और संपूर्णता से विकास, राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली के सम्मुख आने वाले वास्तविक चुनौतियों का पता लगाना और उनका सामना करना और भारतीय जड़ों से गहरा जुड़ाव जैसे शिक्षा के लक्ष्य इस दस्तावेज में दिए गए हैं।

विद्यालय की अवस्थाओं को चार मुख्य चरणों में बाँटा गया है जिसमें प्रथम बुनियादी चरण 3 वर्ष से 6 वर्ष की आयु तक जिसका प्रारंभिक बाल्यावस्था देखभाल और बुनियादी विकास करना उद्देश्य है दूसरी प्रारंभिक चरण जो 8 से 11 वर्ष की आयु में कक्षा 3 से 5 के स्तर तक के लिए होगी, तीसरा मिडिल चरण जो 11 से 14 वर्ष की आयु और कक्षा 6 से 8 तक के लिए निर्धारित है चौथा माध्यमिक चरण जो 14 से 18 वर्ष के आयु के बालकों के लिए और कक्षा 9 से 12 के लिए निर्धारित है। बालक के सभी पक्षों का विकास जिसमें शारीरिक, संज्ञानात्मक, भाषा, सामाजिक-सांस्कृतिक और नैतिक विकास के अनुसार शैशवावस्था, पूर्व बाल्यावस्था, मध्य बाल्यावस्था और किशोरावस्था को सम्मिलित किया गया है। संप्रत्यय विकास के अंतर्गत साक्षरता विकास जिसमें पूर्व वाचन, आरंभिक वाचन, प्रवाह, नया सीखने के लिए पढ़ना, बहुदृष्टि, प्रत्यक्षीकरण, व्यावहारिक और सैद्धांतिक संप्रत्य जिसमें सम्मिलित है। विकास के इन चरणों में बालक के विकास की विभिन्न अवस्थाएँ, उसके संप्रत्यय विकास, उसके अन्वेषण के तरीके और चरणों का प्रारूप विस्तृत रूप से दिया गया है।

सीखने के मानदंड के उपागम के अंतर्गत परिभाषाएँ, उद्देश्यों से सीखने के प्रतिफल, उद्देश्यों से पाठ्यचर्या लक्ष्य, पाठ्यचर्या लक्ष्यों से दक्षता हैं और दक्षता

से सीखने के प्रतिफल प्राप्त होने की प्रक्रिया को इस दस्तावेज में दर्शाया गया है। विषय वस्तु के उपागम के अंतर्गत पाठ्यचर्या के केंद्रीय तत्त्व, सीखने का वातावरण एवं विषय सामग्री, विषय सामग्री चयन की विस्तृत उपागम, पाठ्यपुस्तक प्रारूप के सिद्धांत, पाठ्यपुस्तक विकास की प्रक्रिया, पाठ्य पुस्तकों के अर्थपूर्ण उपयोग के लिए अध्यापक सहायता को सम्मिलित किया गया है। शिक्षणशास्त्र उपागम के अंतर्गत बालक का विकास एवं सीखना, स्कूली शिक्षा के उद्देश्य प्राप्ति के लिए प्रभाव प्रभावी शिक्षण शास्त्र, कक्षा में प्रभावी शिक्षण शास्त्र के मुख्य तत्त्व, शिक्षण के लिए योजना, कक्षा प्रबंधन और विद्यार्थी व्यवहार, व्यक्तिगत अधिगम आवश्यकताएँ जिसमें दिव्यांग विद्यार्थियों का शिक्षण शास्त्र भी संबंधित है। विभिन्न चरणों का शिक्षण शास्त्र जो विकास के पक्षों के संदर्भ में है, शिक्षण शास्त्र के समस्त सिद्धांत इसके अंतर्गत दिए गए हैं। आकलन उपागम के अंतर्गत आकलन प्रयोजन, अधिगम का, अधिगम के लिए, और अधिगम के रूप में आकलन, आकलन में वर्तमान चुनौतियाँ, अच्छे आकलन के मुख्य सिद्धांत, आकलन के प्रकार विभिन्न चरणों का आकलन जिसमें चारों विकास की अवस्थाएँ दी गई है को सम्मिलित किया गया है। दसवीं और बारहवीं कक्षा की बोर्ड परीक्षा के उपागम के बारे में विस्तृत वर्णन किया गया है। समय आवंटन में विभिन्न चरणों जैसे बुनियादी, प्रारंभिक, मिडिल और माध्यमिक स्तर में शिक्षण के समय के घंटे और विभिन्न चरणों में समय आवंटन के सरोकार चित्र सहित विषय वार और सप्ताह बार आवंटन किया गया है।

2. भाग B विद्यालय विषय/क्षेत्र

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के किस भाग में विद्यालय विषय और क्षेत्रों के बारे में विस्तृत वर्णन दिया गया है –

बालक के विकास के बुनियादी चरण हेतु मुख्य आधारभूत निर्देशक सिद्धांत राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 पर आधारित हैं। इस चरण में बालक के सीखने की प्रक्रिया जिसमें खेल परिवार और समुदाय के महत्त्व को दर्शाया गया है इस चरण में पाठ्यचर्या के लक्ष्यों को विकास के पक्षों के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। अधिगम प्रतिफल का चित्रण विकास पक्षों और पाठ्यचर्या लक्ष्यों के संदर्भ में दिया गया है। शिक्षक व बालकों में धनात्मक संबंध का निर्माण, शिक्षण शास्त्र में खेल, वार्तालाप, कहानियाँ, खिलौना, संगीत कला, हस्तकला आदि द्वारा सीखना, कक्षा कक्ष में धनात्मक वातावरण का सृजन जिससे कक्षा प्रबंधन और कठिन व्यवहार का प्रबंधन किया जा सके।

बुनियादी चरण में विद्यालय विषय/क्षेत्र में भाषा, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, कला शिक्षा और शारीरिक शिक्षा को सम्मिलित किया गया है। शेष सभी चरणों में इन विषयों के साथ-साथ अंतर विश्व क्षेत्र और व्यावसायिक शिक्षा को भी सम्मिलित किया गया है माध्यमिक चरण के ग्रेड 11 व 12 में विभिन्न क्षेत्रों में से को चयन की उपलब्धता कराई गई है जिससे बालक अपनी क्षमता और रुचि के अनुसार कोष का चयन कर सकते हैं।

भाषा शिक्षा–

भाषा शिक्षा के अंतर्गत जो उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं उसमें साक्षरता प्राप्ति, प्रभावी संप्रेषण कौशल, अन्य कार्यात्मक योग्यताओं का विकास, साक्षरता को सर्जनात्मक क्षमताओं का निर्माण, भाषाई विभिन्नता की सराहना निर्धारित किए गए हैं। इसके अलावा भाषा विज्ञान की प्रकृति वर्तमान चुनौतियाँ, अधिगम मानक जो तीनों भाषाओं के चरणवार दी गई हैं, विषय सामग्री के चयन के सिद्धांत जो चरणों में भाषा प्रथम व द्वितीय के संदर्भ में दिया गया है, शिक्षण शास्त्रीय उपागम आकलन जिसमें निर्माणात्मक और संकलित योगात्मक आकलन और उसकी तकनीक जिसमें पोर्टफोलियो एनीकडोटल, चेकलिस्ट, मापनी, पर्यवेक्षण, प्रश्न आदि सम्मिलित हैं।

गणित शिक्षा –

इस दस्तावेज में विद्यालय शिक्षा के गणित शिक्षा में बुनियादी चरण में संख्याओं को जोड़ना घटाना और भारतीय संख्याओं का ज्ञान, प्रारंभिक स्तर पर मूलभूत संक्रियाएँ जिसमें गुणा, भाग, आकृतियों और उनका मापन, मिडिल चरण में सीखे गए संप्रत्यय का उपयोग तथा माध्यमिक चरण में तार्किक तर्कना द्वारा अपने को सिद्ध करना, पुष्टि करना इत्यादि निर्धारित किए गए हैं। गणित शिक्षा का लक्ष्य तार्किक तर्कना की क्षमताएँ, मानसिक दृढ़ता सर्जनात्मक समस्या समाधान क्षमताएँ, संप्रत्यय आत्मक और प्रक्रियात्मक मूल्यों को विकसित करना निर्धारित किए गए हैं। गणित शिक्षा में ज्ञान की प्रकृति, उसकी मुख्य चुनौतियाँ, अधिगम के मानक विषय सामग्री का चयन और उसके सिद्धांत, विभिन्न चरणों में सामग्री और संसाधन का विस्तृत दृष्टिकोण प्रस्तुत किया गया है। शिक्षण शास्त्र में अनुदेशन/अभ्यास शिक्षण की विधियाँ जिसमें खेल, गतिविधि, अन्वेषण, खोज आधारित समस्या समाधान, आगमन-निगमन विधियाँ, बहुस्तरीय और निदानात्मक शिक्षण के साथ-साथ अधिगम कठिनाइयों को भी हल करने के तरीके बताए गए हैं। गणित को अन्य पाठ्यचर्या क्षेत्रों के साथ समेकित करके शिक्षण करवाया जाना चाहिए ऐसा सुझाव इस दस्तावेज में दिया गया है।

विज्ञान शिक्षा –

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या रूपरेखा में बुनियादी चरण में विज्ञान की प्रक्रिया सीखना प्रारंभिक चरण में विज्ञान की प्रक्रिया, प्राकृतिक पर्यावरण में संबंध और सरल प्रारूपों को सीखना, मिडिल चरण में जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान और

भौतिक विज्ञान का समेकन पर्यवेक्षण और अनुभवों द्वारा सीखना और माध्यमिक चरण में जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान और भौतिक विज्ञान अलग-अलग विषयों को पढ़ने की अनुशंसा की गई है। विज्ञान शिक्षा के लक्ष्य में विज्ञान की समझ विकसित करना जिसमें विज्ञान ज्ञान, विज्ञानिक विधियों का उपयोग, वैज्ञानिक ज्ञान का उद्भव, विज्ञान और अन्य पाठ्यचर्या क्षेत्रों का संबंध, विज्ञान तकनीकी व समाज का संबंध, वैज्ञानिक स्वभाव को विकसित करना आदि मुख्य लक्ष्य रखे गए हैं। इसके अतिरिक्त इस दस्तावेज में ज्ञान की प्रकृति, विषय विशेष की चुनौतियाँ, सीखने के मानक जिसमें चरणों के अनुसार पाठ्यचर्या के लक्षण बताएं को सम्मिलित किया गया है। विषय सामग्री चयन के सिद्धांत, शिक्षण शास्त्र में शिक्षण शास्त्रीय सिद्धांत, शिक्षण शास्त्र के उपागम जिसमें विज्ञान पर अनुभव, खोज, अन्वेषण उपागम, परियोजना केंद्रित उपागम, शिक्षाप्रद उपागम, प्रदर्शन, को विभिन्न विभिन्न सेटिंग में जैसे प्रयोगशाला, कक्षा, क्षेत्र विशेष में बताए गए हैं। विज्ञान शिक्षण में संसाधन और कक्षा प्रबंधन पर भी बल दिया गया है। विज्ञान के आकलन के अंतर्गत आकलन के सिद्धांत, आकलन के उपागम जिसमें निर्माणात्मक और संकलित को औपचारिक और अनौपचारिक रूप से, बाहरी और आंतरिक दोनों परिस्थितियों में किया जाएगा। आकलन प्रतिफल जो विद्यार्थी, अध्यापक और मुख्य अध्यापक के लिए भी मार्गदर्शन का काम करेंगे को अनिवार्य बताया गया है।

सामाजिक विज्ञान -

सामाजिक विज्ञान के विद्यालय स्तर पर विषय ज्ञान और समाज कार्यों की समझ का विकास, अन्वेषण विधियों की समझ एवं सराहना, नैतिक, मानवीय और संवैधानिक मूल्यों का पोषण जैसे लक्ष्य इस दस्तावेज में बताए गए। ज्ञान की प्रकृति के अंतर्गत वर्तमान चुनौतियाँ जिसमें रटन प्रणाली से सीखना, विषय को अलग-थलग करके सीखना, जीवन से कटा हुआ पाना और अधिगम मानक को चरणों के अनुसार पाठ्यचर्या के लक्ष्य और कक्षाओं के अनुरूप विकसित करना, विषय सामग्री जिसमें विषय सामग्री चयन के सिद्धांत, सामग्री और संसाधन सम्मिलित हैं को लिया गया है। सामाजिक विज्ञान के शिक्षण शास्त्र में शिक्षा शास्त्रीय सरोकार, शिक्षण शास्त्रीय उपागम जिसमें अन्वेषण मुद्दे आधारित अधिगम, वार्तालाप, परिचर्चा, डिबेट (वाद विवाद), भूमिका निर्वहन, अनुशिक्षण, समुदाय सेवा एवं क्षेत्रीय भ्रमण, चिंतनशील निबंध, परियोजना कार्य, मॉडल और कलाकृतियों की परियोजनाओं के लिए विशेष अवसर प्रदान करना, अधिगम प्रतिफल में कक्षा में शिक्षण शास्त्र और आकलन में अंतर संबंध स्थापित करना इस दस्तावेज में सुझाया गया है। सामाजिक विज्ञान के आकलन के लिए आकलन और मूल्यांकन की चुनौतियाँ, आकलन के सिद्धांत और कक्षा में आकलन के लिए रूपरेखा को विस्तृत रूप से प्रदर्शित किया गया है।

विद्यालय शिक्षा में मानवीय क्षमताओं का विकास, स्कूल शिक्षा में पूर्ण मानव क्षमता मूल्यों और स्वभाव का विकास, स्कूल शिक्षा में पाठ्यचर्या और शिक्षण शास्त्रीय संरचना सीखने के मानदंडों, सभी विषयों और सीखने के पक्षों का समान स्तर पर समेकन और संपूर्णता से विकास, राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली के सम्मुख आने वाले वास्तविक चुनौतियों का पता लगाना और उनका सामना करना और भारतीय जड़ों से गहरा जुड़ाव जैसे शिक्षा के लक्ष्य इस दस्तावेज में दिए गए हैं।

कला शिक्षा - कला शिक्षा के अंतर्गत इस रूपरेखा में व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियाँ जिसका उद्देश्य नवाचार और कल्पनाशीलता, अभिव्यक्ति और सांस्कृतिक कार्य द्वारा सर्जनात्मक कार्य करना हो प्रस्तुत किए गए हैं। कला शिक्षा में सभी स्तरों पर सर्जनात्मक विचार और अभिव्यक्ति, सामाजिक-संवेगात्मक सेहत/स्वास्थ्य, संवेगात्मक जागरूकता और संवेगात्मक नियम्मन इसके लक्ष्य दर्शाए गए हैं। कला शिक्षा द्वारा सभी विद्यार्थियों को सर्जन में आनंद लेना, अपनी कल्पनाशीलता और रचनात्मकता का अनुप्रयोग करना, विचार व संवेग प्रस्तुत करना, प्रकृति की सुंदरता की सराहना करना, अपनी संस्कृति और परंपराओं से जुड़ने के भाव का विकास करना इसके लक्ष्यों में सम्मिलित हैं। कला में ज्ञान की प्रकृति, मानवीय, सौंदर्यआत्मक और संवेदनशीलता लिए हुए होनी चाहिए। कला शिक्षा के उपागम में विभिन्न चरणों में कलाओं का शिक्षण अधिगम में समकन के रूप में और उत्पाद की बजाय प्रक्रिया पर बल देने वाला होगा। वर्तमान चुनौतियों में समय, संसाधन, गंभीरता की कमी, अच्छे कला शिक्षकों की भयंकर कमी, रूढ़िवादी पुनर्बलन, सामाजिक आकांक्षा आदि मुख्य चुनौतियाँ इस दस्तावेज में दर्शाई गई है। अधिगम मानक भी चरणों के अनुसार और विकास पक्षों के अनुसार दिए गए हैं। विषय सामग्री में विशेष सामग्री चयन के सिद्धांत, विषय सामग्री का संगठन विस्तृत रूप से बताया गया है। शिक्षण शास्त्र में कला शिक्षा प्रक्रिया केंद्रित आधारित होनी चाहिए, सहयोगी और अनुभव से निकली हुई होनी चाहिए, विविधता और भिन्नता

लिए हुए और अंतर विषय अभ्यास को प्रोत्साहन देने वाली होनी चाहिए, क्षेत्रीय संसाधन कला और संस्कृति पर बल दिया जाना चाहिए और सभी विद्यार्थियों का समावेशन इस कला शिक्षा में होना चाहिए। आकलन के संदर्भ में यह रूपरेखा कलाओं में आकलन के सिद्धांत, आकलन की निर्देशिका, निर्माणात्मक और अंतर व्यक्तिक विषय/ क्षेत्र- अंतर व्यक्तिगत विषय के संदर्भ में पर्यावरण शिक्षा और समाज में व्यक्ति को सम्मिलित किया गया है। इस रूपरेखा में पर्यावरण शिक्षा के अंतर्गत विभिन्न चरणों में हमारे चारों ओर का संसार, इसके लक्ष्य, उपागम, ज्ञान की प्रकृति, विषय विशेष की चुनौतियाँ, अधिगम मानक, विषय सामग्री, शिक्षणशास्त्र उपागम, आकलन (निर्माणात्मक और संकलित) के बारे में अनुशंसा दी गई है। मिडिल चरण में पर्यावरण शिक्षा में विज्ञान व सामाजिक विज्ञान के साथ समेकन पर बल दिया गया है माध्यमिक स्तर में 9 और 10 कक्षा में पर्यावरण के लक्ष्य पर्यावरण साक्षरता और सामाजिक परिस्थिति के संबंध को सम्मिलित किया गया है। ज्ञान की प्रकृति, विषय सामग्री चयन के सिद्धांत और उसके उपागम, शिक्षण शास्त्र, आकलन और अध्यापक के विषय में अनुशंसा की गई हैं। समाज में व्यक्ति के संदर्भ में समाज में व्यक्तियों के लक्ष्य, ज्ञान की प्रकृति, वर्तमान की चुनौतियाँ, अधिगम मानक जिसमें पाठ्यचर्या और दक्षता में सम्मिलित हैं, विषय सामग्री उसका चयन, शिक्षण शास्त्र उपागम हेतु सुझाव, आकलन और इसके लिए अध्यापक के बारे में विस्तृत ब्यौरा द्वारा दिया गया है।

शारीरिक शिक्षा - शारीरिक शिक्षा के लक्ष्य में शारीरिक गतिविधियों, खेलों के लिए लगाव और प्रेम विकास, स्वास्थ्य, आनंद लेना, अभिव्यक्ति, आत्म विवेचना और सामाजिक अंतरक्रिया को मूल्य देना सम्मिलित है। विभिन्न प्रकार के कौशल और मानव शरीर की गतियों का ज्ञान और क्षमता का विकास, लचीलापन, दृढ़ता और रुचियों के लिए उत्कृष्ट कार्य करना, तदनुभूति, सहयोग ,सही खेल और भ्रातृत्व पोषण जैसे लक्ष्य शारीरिक शिक्षा हेतु निर्धारित किए गए हैं। पाठ्यचर्या के दिशा निर्देशों के अनुसार सभी विद्यार्थियों को समान अवसर मिले, विद्यार्थी सहयोग और समूह कार्य को सीखे, सभी चरणों के लिए शारीरिक शिक्षा अनिवार्य हो, शारीरिक शिक्षा के लिए संसाधन प्रदान करने चाहिए, शारीरिक शिक्षा को समान महत्त्व/स्थान मिले, प्रतिस्पर्धा उत्कृष्टता के माध्यम के रूप में हो सकती है, ज्ञान की प्रकृति, वर्तमान समय की व्यावहारिक चुनौतियाँ, अधिगम मानक विभिन्न चरणों के अनुसार चित्रित उदाहरण सहित दिए गए हैं। इस दस्तावेज में दिए गए हैं विषय सामग्री, ग्रेड के अनुसार शिक्षण शास्त्रीय उपागम, शिक्षण शास्त्र दिशा निर्देश, चरण विशेष की विभिन्नताओं सहित दिए गए हैं। आकलन में निर्माणात्मक और संकलित दोनों प्रकार के आकलन पर बल दिया गया है और उसके चित्रित उदाहरण दिए गए हैं। दस्तावेज में विभिन्न चरणों के अनुसार गतिविधियाँ करवाई जा सकती हैं का विस्तृत ब्यौरा द्वारा दिया गया है।

व्यावसायिक शिक्षा - व्यावसायिक शिक्षा के लक्ष्यों में विभिन्न प्रकार के कार्यों के लिए समझ और आधारभूत क्षमताओं का विकास, विशिष्ट व्यवसाय के लिए तैयारी, सभी व्यवसायों और श्रम के प्रति सम्मान तथा कार्य संबंधी मूल्य व स्वभाव के विकास को ही लक्ष्य के रूप में लिया गया है। व्यावसायिक शिक्षा के उपागमों में कुछ महत्त्वपूर्ण सरोकार, बुनियादी और आरंभिक चरणों में पूर्व व्यवसाय क्षमताओं का विकास, मिडिल और माध्यमिक चरणों में व्यावसायिक दक्षता के विकास को बताया गया है। विषय विशिष्ट चुनौतियाँ, ज्ञान की प्रकृति और विषय के मानको में पाठ्यचर्या लक्ष्य और दक्षताएँ चरण सहित चित्रित उदाहरणों द्वारा दी गई हैं। विषय सामग्री के अंतर्गत कार्य के प्रकार के अनुसार विषय सामग्री के चयन के सिद्धांत, व्यवसाय के अनुसार विषय सामग्री चयन के सिद्धांत, और चरणों के अनुसार विषय सामग्री सामग्री व उपकरण चित्रण रूपरेखा में किया गया है। शिक्षण शास्त्र में व्यावसायिक शिक्षा के शिक्षण शास्त्र के सिद्धांत, शिक्षण शास्त्र के सिद्धांतों का क्रियान्वयन, सिद्धांत और व्यवहार का समेकन, अधिगम वास्तविक जीवन के जितना संभव हो सके निकट लाना, इसके लिए कक्षा, भ्रमण, कार्यशाला करवाई जा सकती है। आकलन में समग्र उपागम पर बल दिया गया है जिसमें निर्माणात्मक और संकलित दोनों प्रकार के उपागम को उपयोग में लिया जाना चाहिए। व्यावसायिक शिक्षा के लिए परिस्थितियाँ प्रदान करने में अध्यापक और संदर्भ व्यक्ति, मास्टर अनुदेशक, सही स्थान और संसाधन, सुरक्षा सरोकार, दिव्यांग विद्यार्थियों के लिए सुविधाएँ, उपयुक्त जगह/ स्थान, पाठ्य पुस्तकें और मैनुअल तथा समय प्रदान करने के ऊपर बल दिया गया है।

माध्यमिक चरण ग्रेड 11 व 12 के लिए- विभिन्न विषयों में से चयन किया जा सकता है, मानविकी जिसमें दर्शनशास्त्र, अंग्रेजी साहित्य इत्यादि के लिए कोर्स डिजाइन के सिद्धांत को चित्रण अधिगम प्रतिफल और शिक्षण शास्त्रीय उपागम के लिए अनुशंसा की गई है। सामाजिक विज्ञान में इतिहास, समाजशास्त्र इत्यादि के कोर्स डिजाइन के सिद्धांतों और कोर्स चित्रण को दर्शाया गया है। विज्ञान में जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान के लिए कोर्स डिजाइन के सिद्धांत और कोर्स चित्रण को बताया गया है। गणित व कंप्यूटिंग में गणित और उसके उपयोग को विस्तृत रूप से बताया गया है। कलाएँ जिसमें दृश्य कला, थिएटर, संगीत, नृत्य एवं गतिशीलता में विभिन्न प्रकार के कोर्स डिजाइन, कला की सराहना और प्रबंधन, कोर्स कलाओं में सर्टिफिकेट, दृश्य कला में कला, अभ्यास,

संगीत कला में कला, अभ्यास को चित्र सहित इस दस्तावेज में प्रस्तुत किया गया है व्यावसायिक शिक्षा शारीरिक शिक्षा अंतर विषय क्षेत्र के साथ-साथ ग्रेड 11 व 12 और उच्च शिक्षा के लिए सुझाव भी दिए गए हैं।

भाग-3 कोर्स कटिंग थीम्स -

कोर्स कटिंग थीम भाग के अंतर्गत मूल्य, समावेशन, सूचना एवं संप्रेषण तकनीकी, परामर्श एवं निर्देशन, पर्यावरण और भारत की जड़ों से जुड़ना जैसे मुद्दों को लिया गया है।

मूल्य - विद्यालय में मूल्य विकास की प्रक्रिया, कठिन परंतु समालोचनात्मक प्रश्न, मूल्य शिक्षा अलग विषय के रूप में प्रभावी है अथवा नहीं, जीवन और विद्यालय विषय के रूप में मूल्यों का संघर्ष का अंतर करना, मूल्यों का आकलन कर सकते हैं या नहीं आदि, विद्यालय तंत्र में मूल्य पर विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है।

समावेशन - समावेशन विद्यालय के भौतिक वातावरण में समावेशन, परिचर्या और पाठ्यपुस्तकों द्वारा समावेशन संबोधन, शिक्षण शास्त्र द्वारा समावेशन और संबंधित मुद्दे इसके अंतर्गत लिए गए हैं।

सूचना संप्रेषण तकनीकी - सूचना संप्रेषण तकनीकी के अंतर्गत स्कूल शिक्षा में आईसीटी की संभावना और विद्यार्थियों अध्यापकों के लिए उसकी पहुँच, विषय सामग्री निर्माण, व्यक्तिगत ध्यान देना, अंत: क्रियात्मक विषय सामग्री, शिक्षा के लिए आईसीटी के समाधान संभव जिसमें डिजिटल पुस्तकें, पुस्तकालय, वीडियो, एनिमेशन और ऑडियो, ऑनलाइन कोर्स, क्यू आर कोड, आभासी प्रयोगशाला और अनुरूपण को उनकी प्रासंगिकता और लाभ के संदर्भ में प्रस्तुत किया गया है। सामग्री निर्माण क्षमताएँ, आकलन बैंक और अभ्यास सामग्री, स्कूल शिक्षा में आईसीटी उपयोग में सावधानियाँ जिसमें सुरक्षा, गोपनीयता, उपयुक्तता, दूसरी और लगाव और वाणिज्यकरण को लिया गया है। स्कूल शिक्षा में आईसीटी उपयोग के सिद्धांत, बालक के अधिकार और आईसीटी, चरण विशिष्ट दिशानिर्देश आईसीटी के लिए भी इस रूपरेखा में प्रस्तुत किए गए हैं।

परामर्श और निर्देशन के लिए उसके क्षेत्र, परामर्श और निर्देशन प्रदाता, अपेक्षित प्रतिफल आदि को लिया गया है।

पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता विकास और पर्यावरण की देखभाल में विद्यालय के विभिन्न चरणों में पर्यावरण के बारे में अधिगम पर विस्तृत ब्यौरा दिया गया है।

भारत की जड़ों से जुड़ने में विभिन्न चरणों और पाठ्यचर्या के क्षेत्रों में यह कैसे संभव किया जाए इसको चित्रित रूप में दर्शाया गया है।

4 भाग D विद्यालय संस्कृति और प्रक्रियाएँ

विद्यालय संस्कृति के अंतर्गत संस्कृति है क्या? उसके मूल्य, मानक और विश्वास क्या है? विद्यालय संस्कृति का अधिगम पर प्रभाव जिसमें अधिगम वातावरण का विकास, मूल्य और स्वभाव का विकास सम्मिलित हैं। विद्यालय संस्कृति में संवैधानिक तत्त्व आपसी विश्वास एवं सम्मान, खुला संप्रेषण और सहयोग, सुरक्षा और उत्तरदायित्व, संकेत, व्यवस्था और अभ्यास के अंतर्गत कक्षा, अभ्यास, स्कूल प्रार्थना, भोजन, खेल गतिविधियों में, अभिभावकों और समुदाय के साथ संलग्नता के लिए अनुशंसाएँ दी गई हैं।

विद्यालय प्रक्रियाओं में पाठ्यचर्या प्रक्रियाओं के अंतर्गत स्कूल समय सारणी, प्रार्थना सभा, पुस्तकालय, छात्र समितियों एवं मंच को सम्मिलित किया गया है। पाठ्यचर्या प्रक्रिया में शिक्षक सहयोग व व्यावसायिक विकास, समुदाय व अभिभावकों से संलग्नता, भोजन अवकाश, स्वास्थ्य व स्वच्छता को सम्मिलित किया गया है। संगठनात्मक प्रक्रियाओं में विद्यालय विकास योजना, समय व संसाधन प्रदान करना, वार्षिक पंचांग, विद्यार्थी सुरक्षा सुनिश्चित करना, शारीरिक, संवेगात्मक, बुद्धि उत्पीड़न की रोकथाम, साइबर सुरक्षा और इसके लिए संसाधन प्रदान करना इस रूपरेखा में प्रस्तुत किया गया है।

5 भाग E एक सहयोगी पारिस्थितिकी तंत्र का सर्जन

सीखने के लिए उपयुक्त वातावरण को सुनिश्चित करना जिसमें आधारभूत ढाँचे के अंतर्गत आधारभूत संरचना और चारदीवारी, प्रात: कालीन सभा का खुला क्षेत्र होने चाहिए, पेड़-पौधों और प्रकृति का क्षेत्र होना चाहिए। अंदर के ढाँचे के अंतर्गत कक्षा कक्ष, पुस्तकालय, प्रयोगशाला, भोजन का क्षेत्र, पीने का पानी, शौचालय के अलावा बिजली पानी की आपूर्ति निर्बाध होनी चाहिए, सुरक्षा सुनिश्चित करने वाला ढाँचा और समावेशन को सुनिश्चित करने वाला ढाँचागत सुविधाएँ उसमें होनी चाहिए।

विद्यार्थी-अध्यापक अनुपात सही होना चाहिए जिससे व्यक्तिगत ध्यान दिया जा सके, छात्र सक्रियता और सहभागिता को बनाया रखा जा सके। योग्यताधारी शिक्षक, प्रशिक्षण शास्त्रीय विशेषज्ञ सभी स्तरों पर होने चाहिए।

अध्यापकों का सबलीकरण - अध्यापकों के लिए सक्षम वातावरण को सुनिश्चित किया जाना चाहिए, सुविधाएँ और कार्य वातावरण देना चाहिए, पूर्व सेवाकालीन अध्यापक शिक्षा और सेवारत अध्यापक शिक्षा के लिए सरंक्षण और सहायता दी जानी चाहिए, कैरियर सीडी और व्यावसायिक विकास के अवसर दिए जाने चाहिए, अध्यापक स्वायत्तता और अध्यापक उत्तरदायित्व निश्चित किए जाने चाहिए। शैक्षिक और प्रशासनिक पदाधिकारियों की भूमिका निश्चित होने चाहिए। सतत व्यावसायिक विकास, नवाचारी अधिगम सामग्री विकास की अनुशंसा अध्यापकों के लिए रूपरेखा में की गई है। ❑

भारतीय चित्रकला के नवजागरण में भारतीय कला दर्शन एवं शिक्षा

डॉ. धर्मवीर वशिष्ठ

विभागाध्यक्ष,
दृश्य कला विभाग,
मोहनलाल सुखाड़िया
विश्वविद्यालय, उदयपुर

भारतीय कला एवं दर्शन का भारतीय संस्कृति और सभ्यता में महत्त्वपूर्ण स्थान है। सांस्कृतिक वैभव को प्रदर्शित करते हुए कलात्मक शिल्प एवं शास्त्रीय कलाओं द्वारा प्राचीन काल से भारतीय जनमानस के सौन्दर्य एवं जीवन दर्शन का रचनात्मक प्रस्तुतीकरण होता रहा है।

भारतीय कला एवं संस्कृति के विविध संदर्भ वैदिक एवं पौराणिक काल से प्राप्त होते हैं। रामायण कालीन कलात्मक प्रसंगों में अयोध्या नगरी के सौन्दर्य का वर्णन है और साथ ही मर्यादा पुरूषोत्तम राम, सीता एवं विविध चरित्रों के जीवन मूल्यों एवं गुणों को उजागर किया है। महाभारत में श्रीकृष्ण द्वारा गीता का उपदेश भारतीय दर्शन का मुख्य आधार है। शुंग, कुषाण, मौर्य एवं गुप्तकाल से प्राप्त कलात्मक अवशेषों में भारतीय दर्शन के प्रतीकात्मक स्वरूपों को प्रस्तर पर उत्कीर्ण किया गया है। अजन्ता-एलोरा के कलात्मक वृहद प्रस्तर शिल्प एवं कैलाश मंदिर सौन्दर्य कला एवं दर्शन के सामंजस्य का विराट प्रदर्शन है।

भारतीय कलाओं में धर्म एवं दर्शन की प्रस्तुति हेतु शास्त्रीय संदर्भ एवं ग्रन्थ प्राप्त हुए जिसके फलस्वरूप शास्त्रीय कलाएँ विकसित हुई। शास्त्रीय कलाओं की क्षेत्रगत विशेषता होती हैं इसी आधार पर भारतीय कला में मंदिर एवं मूर्तिशिल्प निर्माण की तीन प्रमुख शैलियाँ विकसित हुई- देव, यक्ष एवं नाग शैली। इसमें देव शैली में पूर्व एवं उत्तर भारत के मंदिर एवं मूर्ति शिल्प निर्मित है। यक्ष शैली में पश्चिम भारत के मंदिर मूर्ति शिल्प एवं नाग शैली में दक्षिण भारत के मंदिर एवं मूर्ति शिल्पों के अनेक कलात्मक स्थल भारतीय कला एवं संस्कृति के स्थाई स्वरूपों की अभिव्यंजना है।

भारतीय कलाओं का सौन्दर्य दर्शन शास्त्रीय कलाओं में प्रदर्शित हुआ जिसके फलस्वरूप पूर्वी, उत्तरी, दक्षिणी एवं पश्चिमी भारत में शास्त्रीय शैलियाँ क्षेत्रीय लोकशैलीगत तत्त्वों का समावेश कर विकसित हुई, जिसके फलस्वरूप क्षेत्रीय लोक तत्त्वों से प्रभावित विविध चित्र शैलियाँ, नृत्य शैलियाँ, लोक एवं परम्परागत कलाओं के रूप में प्रतिनिधित्व करती है। मध्यकाल तक कला के शास्त्रीय आधारित नियम थे जिनका उल्लेख कामसूत्र, विष्णु धर्मोत्तरपुराण, चित्रलक्षण, शिल्पशास्त्र आदि शास्त्रीय ग्रन्थों में मिलता है।

भारतीय चित्रकला के नवजागरण का इतिहास प्रचलित परम्परागत कला शैलियों (राजस्थानी, पहाड़ी तथा मुगल) में परिवर्तन तथा भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना के साथ जुड़ा हुआ है। अठारवीं सदी के अन्त से भारत में पाश्चात्य राजनैतिक एवं सांस्कृतिक प्रभाव विकसित हुए। अंगरेज 1757 ई. से फ्रांसिसियों तथा प्लासी युद्ध में नवाब सिराजुद्दौला को हरा कर बंगाल के शासक स्वामी बन बैठे। मद्रास व बम्बई में वे पहले ही पाँव जमा चुके थे। राजस्थान की रियासतों में मरहठों और पिण्डारियों के आक्रमण व लूटपाट पर मुगल सल्तनत को सहारा देकर देश के अन्य राजाओं को भी अपने संरक्षण में ले लिया। लार्ड हार्डिग्ज ने इस सम्बन्ध की नीति भी प्रसारित की। हैदराबाद के निजाम सबसे पहले इस संधि में आये।

भारतीय कलाओं में नवजागरण 18वीं सदी के उत्तरार्द्ध व उन्नीसवीं शती के आरंभ में प्राच्य एवं पाश्चात्य सभ्यता के मध्य गठित संघर्ष का परिणाम था। यूरोपीय कला पर

प्राच्य प्रभाव की अपेक्षा एशिया पर युरोपीय सभ्यता का प्रभाव कहीं अधिक व्यापक रूप से पड़ा। यह प्रभाव आनुपातिक असंतुलन के होते हुए भी पारस्परिक था और इसका बहुत व्यापक परिणाम हुआ। उस युग में कुछ गिने चुने अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त भारतीयों ने आधुनिक भारतीय संस्कृति की आधारशिला का निर्माण किया। अत: तत्कालीन शासक वर्ग ने भारतीय कलाकारों एवं शिल्पियों को शिक्षा देने के लिए कला-विद्यालय स्थापित करने के ध्येय से 1851 ई. में, कलकत्ता में कला केन्द्र की स्थापना की। तत्पश्चात् बम्बई, मद्रास, जयपुर एवं लाहौर में भी ब्रिटिश कलाकारों द्वारा प्रशिक्षण पद्धति का सूत्रपात किया गया।

भारत में आधुनिक कला के विकास में जो नवचेतना उत्पन्न हुई उसकी पृष्ठभूमि में यूरोप की जन जाग्रति का भी विशेष योगदान रहा है। यूरोप के प्रबुद्ध वर्ग कवि, साहित्यकार व दार्शनिकों के मध्य चित्रकारों ने अपने संघर्ष किये, चित्र में विषयवस्तु के बंधन तोड़े। फलक पर ठोस वस्तु के गुणों से वस्तु-निरपेक्ष कला रूपयों तक अनेक प्रयोगों से कला-क्षेत्र में तर्क संगत नवीन कला प्रवृत्तियों का विकास होने लगा जिससे आधुनिक कला धारा विभिन्न देशों व प्रदेशों में अपने नये-नये स्वरूपों में विकसित हुई।

भारत में नव-स्थापित कला केन्द्रों में प्रशिक्षित, कलाकारों के प्रयास से उन्नीसवीं शती के अन्त में एक परम्परा की स्थापना हुई। इस परम्परा में छोटी-बड़ी अनेक शिल्पशालाएँ खुली। इन कलाकारों के चित्रों के नमूने 'श्री रामपुर मिशनरी' प्रेस द्वारा मुद्रित पुस्तकों से हमें मिल सकते हैं। देवताओं एवं देवियों के हाथ के छपे और हाथ के रंगे अनेक चित्र तथा अन्य अनेक प्रकार के चित्र, इन शिल्पशालाओं के शिल्पियों के अति प्रिय विषय थे।

पौर्वात्य 'डेकोरेटिव' कलाकृतियों की उन कला विद्यालयों में अनकृतियाँ करवाकर 'साउथ केसिंगटन' लन्दन में भेजते रहे और भारतीय कला की अन्तरराष्ट्रीय व्यापकता को बढ़ावा मिला, फलत: इससे योरोप में द्विआयामी कला प्रभावों के अनुरूप प्राय: आधुनिक कला के विस्तार की भूमिका दृष्टिगत होने लगी।

इसी युग में मेवाड़ के चित्रकार अपने विविध कला प्रयोगों में तत्पर रहे देखे जा सकते हैं। उदयपुर के चित्रकार ताराचन्द गौड़ (1836 - 66 ई.) द्वारा गुलाबी रंगों के स्वतंत्र छिड़काव का रोचक प्रयोग तत्कालीन नवीन कला संदर्भों में सहायक बनता है। उदयपुर राजप्रसाद में सुरक्षित 'घोड़ों के फाग' 1850 ई. के चित्र इसका भली-भांति प्रयोग हैं। चित्रकार ताराचन्द का एक ऐसा ही 1855 ई. का एक अन्य संदर्भ एण्डयू टोप्सफील्ड ने भी प्रस्तुत किया है कि जब रेजिडेन्ट हेनरी लोरेन्स उदयपुर में संधि के लिए आये तब उनका साथी पर्यटक चित्रकार फ्रेडरिक क्रिश्चन लेविस (1831-1875 ई.) भी चौथी बार भारत आया था, उसने यहाँ के स्थानीय चित्रकार ताराचन्द गौड़ के साथ बैठकर चित्र अपनी-अपनी चित्रण पद्धति में चित्रित किया इस पर रेजिडेन्ट के साथ आई उनकी पुत्री होनोरिया ने, जो स्वयं एक कलासमीक्षक थी, 18 फरवरी 1855 ई के दिन मेवाड़ का संदर्भ देकर, उन दोनों ही चित्रों की तुलनात्मक समीक्षा में यहाँ के स्थानीय चित्रकार ताराचन्द द्वारा संयोजित कृति को उत्कृष्ट बताया और लिखा कि - ''मेरे प्रिय भ्राताओ! इस चित्र में मेरे पिता को चित्रित दिखाया गया है और मैं उनके पास बैठी हूँ, वे देखने में बड़े सुन्दर लग रहे हैं। डॉ. एबडन जयपुर रियासत के एजेन्ट तथा हमारे चिकित्सक है, वे भी निकट बैठे हुए है, समीप ही कैप्टिन यूक एवं चचा हाथ में रूमाल, शायद गर्मी के कारण लिये दिखाये गये हैं, पर मेवाड़ के राज्य चित्रकार ताराचन्द की तीसरी आकृति से यह हवाला मिलता है कि डॉ. एबडन चिकित्सक रूप में ही है न कि एजेन्ट, अत: दृश्य अभिव्यक्तिपरक है और यथार्थता दर्शाता है। यह चित्र पूर्णतया औपचारिक भी है। ताराचन्द ने अपने चित्र में अत्यधिक सरलता को दिखाने का प्रयास किया है और गतिपूर्ण कलाकृति संयोजित की है, जबकि एफ.सी. लेविस ने भावों की अतिशयोक्ति बिना आधार के दिखाई है तथा पृष्ठभूमि में आकृतियाँ जमीन रहित झूलती हुई जैसी चित्रित कर अपनी कल्पना का भ्रमात्मक प्रयोग कर दिया है।'' इस समीक्षात्मक टिप्पणी का अनुशीलन एवं तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट होता है कि चित्रकार ताराचन्द द्वारा चित्रित उक्त चित्र सहज एवं सरलता की भारतीय परम्परा पद्धति में संयोजित श्रेष्ठ कृति है, जिसने योरोप में आधुनिक कला की पृष्ठभूमि बनने से पूर्व ही वहाँ के पाश्चात्य कला समीक्षकों को 1855 ई. में ही अपने द्विआयामी चित्र संयोजन के कलात्मक पक्ष से प्रभावित कर दिया तथा उसी वर्ष दोनों कृतियों को वे लन्दन ले गये और वही तत्कालीन समीक्षिका होनोरिया की उक्त टिप्पणी के साथ अब तक इण्डिया लाइब्रेरी लन्दन में सुरक्षित है।

1857 ई. के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम ने भारत में राष्ट्रीय चेतना व देश प्रेम की जो ज्वाला प्रज्वलित कर दी उसका प्रभाव राजपूताना के विशेषत: मेवाड़ में होना सहज स्वाभाविक था क्योंकि यह यहाँ की बलिदानी परम्परा तथा मानसिकता के अनुकूल था। 'मरणूं नं मंगल गिणे' इस धरती की पहचान रही है। शौर्य तथा स्वतंत्रता के प्रतीक चित्तौड़गढ़ के ऐसे वातावरण में चित्रकार प्रेमजी ने 'फिरंगीया रो शत्रु' शीर्षक 1860 ई. में प्रथम स्वतंत्रता आन्दोलन के अगुआ 'मंगल पाण्डे' की शबीह का चित्रण कर नि:संदेह अदभ्य साहस का परिचय दिया। मंगल पाण्डे को इसके तीन वर्ष पूर्व 8 अप्रेल 1857 ई. को फांसी दी गई थी और कलाकार की संवेदनाशीलता को इसी घटना ने आन्दोलित किया था।

राजा रवि वर्मा एवं पाश्चात्य कला विद्यालय से प्रभावित अन्य चित्रकारों में पेस्तनजी बोहमनजी, गणपति मिस्त्री जैसे अनेक चित्रकार विभिन्न क्षेत्रों में कार्य कर रहे थे। इन नवीन कलाकारों में से बहुसंख्यक आधुनिक काल तक जीवित रहे। जैमिनी कुमार गंगोपाध्याय, ए. धुरंधर और भास्कर मात्रे जैसे प्रतिभाशाली कलाकार यथार्थवादी परम्परा के अगुआ थे, जिसका विकास क्रमश: उनकी कलाकृतियों में स्वत: मूल्यांकित किया जा सकता है।

कला के तथाकथित यूरोपीय आदर्श जो वस्तुत: अपनी कला शिक्षा द्वारा स्थापित हुए वे उस समय की भारतीय कला के आदर्शों को बोझिल बना रहे थे। यही कारण था कि राजा रवि वर्मा तथा दूसरे अन्य चित्रकार भी केवल

विषयवस्तु को भारतीय रखते हुए यूरोपीय शैली को महत्त्व दे रहे थे। राजस्थान के मेवाड़ क्षेत्र में उस युग के प्रतिष्ठित चित्रकार उदयपुर में कुन्दनलाल मिस्त्री (1860-1930 ई.) ने अपने क्षेत्र में तत्कालीन कला शिक्षा की सभी ऊँचाइयों को छुआ। 1887 ई. से ही उन्होंने जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स, बम्बई में नियमित कला शिक्षा प्राप्त की। 1889 ई. में कला डिप्लोमा पूर्ण करने के बाद 1893-1896 ई. तक स्लेड कॉलेज, लंदन विशेष शिक्षा एवं प्रसिद्धि प्राप्त कर भारतीय स्तर पर अनेक पुरस्कारों से भी सम्मानित हुए थे तथा राजा रवि वर्मा से 1901 ई. में उदयपुर महाराणा प्रताप के चित्रण कार्य में उनसे तर्क-वितर्क होना तथा चित्रकार बामापद द्वारा उस युग में इनसे सम्पर्क स्थापित करना अपनी-अपनी कला पद्धति के अनुकूल होने से कला-क्षेत्र में रचनात्मकता को एक विशेष बढ़ावा देने व महाराणा को स्वाभिमान अनुरूप दर्शाने की प्रतिक्रिया स्वाभाविक जान पड़ती है।

सन् 1902 ई. में आयोजित दिल्ली की औद्योगिक कला प्रदर्शनी में अवनीन्द्रनाथ की भारत के आधुनिक कलाकारों में विशेष प्रसिद्धि हुई और उन्हें भारत के आधुनिक कलाकारों में शीर्षस्थ स्थान भी प्राप्त हुआ, वे जापान के प्रसिद्ध कला-समीक्षक ओकाकुरा के सम्पर्क में आए। ओकाकुरा स्वामी विवेकानन्द को जापान ले जाने के लिए भारत आए थे। जापानी कला का पुनर्जागरण ओकाकुरा और फेनोलेसा के प्रयत्नों से सम्भव हुआ था। ओकाकुरा ने अवनीन्द्रनाथ के नवीन कला प्रयोगों का अनुसरण किया। आधुनिक भारतीय कलाकारों तथा जापानी कलाकारों के बीच सीधा सम्पर्क स्थापित करने में वे अगुआ बने। ओकाकुरा संयुक्त एशिया की एकता का स्वप्न देखते थे। उनका दिया हुआ नारा था एशिया एक है और पहली बार यह उनकी कृति 'आईडियल ऑफ दी ईस्ट' में प्रयुक्त हुआ। भारतीय कला से जापान का परिचय कराने के लिए ओकाकुरा ने याकोहामा ताइकान को भारत भेजा। पश्चिम के प्रभाव के कारण भारतीय चित्रकला एकदम अरेखामय हो गई थी। अवनीन्द्रनाथ एवं यामिनी राय ने प्राचीन भारतीय परम्परा की सहायता से चित्रकला की भाषा को रेखा प्रधान बना दिया।

पुनर्जागरण की पृष्ठभूमि में पाश्चात्य संस्कृति के पुर्तगालियों व अँग्रेज कम्पनियों द्वारा भारत पर थोप दिये गये प्रभावों से मुक्त होने की छटपटाहट थी। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारतीय, पश्चिमी साहित्य और विचारों से परिचित होने लगे तब से अपनी भारतीयता का स्वत्व बोध हुआ। बंकिमचन्द चटर्जी, ईश्वर चन्द विद्यासागर, महादेव गोविन्द रानाडे, आर.जी. भण्डारकर ने आँख मूँद कर पश्चिम के अनुकरण का विरोध किया। भारतीय सामाजिक संस्थानो, विचारों आदि की स्थापना की तथा भारतीयों को उत्प्रेरित किया कि वे अपने गौरवमय अतीत से शिक्षा लें और आत्म गौरव विस्मृत न करें। इसी समय भारत में कुछ सामाजिक, धार्मिक आन्दोलन आरम्भ हुए, जिनमें केशवचन्द्र सेन के नेतृत्व में ब्रह्म समाज एंव दयानन्द सरस्वती द्वारा 'आर्य समाज', एनी बेसेन्ट द्वारा 'थियोसोफिकल सोसायटी' तथा स्वामी विवेकानन्द द्वारा 'रामकृष्ण मिशन' की स्थापना प्रमुख हैं। इन आन्दोलनों ने सामाजिक तथा धार्मिक क्षेत्र में नई चेतना और दृष्टि उत्पन्न की।

अँग्रेजी शिक्षा पद्धति के विरोध में 1906 ई. में बंगाल में शिक्षा की 'राष्ट्रीय परिषद्' का गठन हुआ तथा देश में अन्यत्र भी राष्ट्रीय शिक्षा संस्थानों का निर्माण हुआ जिनमें 'शान्ति निकेतन' का अपना एक विशेष योगदान बनता हैं।

भारत में जो गणतन्त्र तथा धर्म निरपेक्ष राज्य स्थापित किया है, उसकी प्रेरणा व दृष्टिकोण 'भारतीय' है किन्तु उसका स्वरूप 'पश्चिम'। हमने अपने धार्मिक आधार को राजनीति में भी उतारने की चेष्टा की है, किन्तु उसके साथ-साथ आधुनिकता की मूल बातों को भी स्वीकार लिया है जो मूल रूप से प्रजातान्त्रिक और सामन्तवादी हैं। हमने स्वतन्त्रता, समानता और भ्रातृत्व को भी अपने देश के परिप्रेक्ष्य में स्वीकारा है। पश्चिम का प्रभाव हमारे खान-पान, वस्त्र वेशभूषा, सामाजिक व्यवहार सब में स्पष्ट नजर आता है। इनमें हमने जहाँ सम्भव हुआ अपनी आवश्यकता के अनुकूल परिवर्तन कर लिया है। हमारी शिक्षा व्यवस्था में यह प्रभाव स्पष्ट नजर आता है। मैकाले द्वारा प्रतिपादित शिक्षा व्यवस्था ने सस्ते क्लर्क पैदा करने का काम किया था जो आज भी हमारी शिक्षा से अलग नहीं हो पाया है। पश्चिमी शिक्षा से प्रभावित शिक्षित वर्ग पश्चिमी वर्ग में इतना रंग गया है कि वह अपनी संस्कृति ही भूलने लगा। आज पुन: प्रयास किया जा रहा है कि वह भारतीय 'संस्कृति एवं सभ्यता' से परिचित हो सके। विदेशी सामाज्यवाद के अमानवीय तरीकों ने लोगों को अपनी संस्कृति के प्रति सचेष्ट किया। ब्रिटेन की राजनैतिक भक्ति तथा सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में 'ब्रह्म समाज', 'प्रार्थना समाज', 'आर्य समाज', 'रामकृष्ण आन्दोलन' आदि का उदय हुआ। इन आन्दोलनों द्वारा देश के विभिन्न क्षेत्रों में सामाजिक चेतना ने भी राष्ट्रीय कला आन्दोलन को बढ़ावा दिया।

देश की स्वतन्त्रता, सम्मान, मैत्री व बंधुता को देश के अन्दर व बाहर उजागर करने के ध्येय से स्वामी विवेकानन्द ने अपनी प्रतिभा का आह्वान किया। उधर बंगाल में दार्शनिक ठाकुर देवेन्द्रनाथ भारतीय दर्शन में अपनी भूमिका निभा रहे थे जिनके सुपुत्रों में कलागुरु रवीन्द्रनाथ, दार्शनिक द्विजेन्द्रनाथ, प्रथम भारतीय आई.सी.एस. सत्येन्द्रनाथ, संगीतज्ञ व चित्रकार जोत्यिन्द्रनाथ आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय है। इसी वंश परम्परा में गगनेन्द्रनाथ व अवनीन्द्रनाथ जैसे चित्रकार तथा दिनेन्द्रनाथ जैसे संगीतज्ञ पैदा हुए जिन्होंने कलकत्ता में 'जोरासॉको' मार्ग पर स्थित निवास पर सर्वप्रथम देशप्रेम व स्वसंस्कृति की उभरती पृष्ठभूमि में जनजाग्रति के कार्य किये। इस जाग्रति में ई.बी. हैवेल व कुमारस्वामी जैसे विद्वानों का भी भरपूर सहयोग मिला। यह जागरण कला इतिहास में 'बंगाल स्कूल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

भारतीय कला पुनर्जागरण की पृष्ठभूमि मूलत: उन्नीसवीं सदी से ही भारत की प्राचीन कला-शैलियों का अध्ययन कर उसके मूल तथ्यों को उजागर करने वाले कला मनीषियों से बनती हैं, जिसमें 'जान फर्ग्युसन' का नाम सबसे पहले लिया जाता है। जान फग्युर्सन 1843 ई. में अजन्ता की गुफाओं का अध्ययन

करने आये और उस पर विशेष प्रकाश भी डाला, साथ ही साथ उन्होंने ब्रिटिश सरकार से अनुरोध किया कि अजन्ता के गुफा चित्रों की अनुकृति करायी जाय। सन् 1847 ई. में मेजर गिल के नेतृत्व में निर्मित अजन्ता के 30 चित्रों की प्रदर्शनी लंदन भेजी गई इससे विदेशी कला-प्रेमियों का ध्यान भारतीय कला के प्रति केन्द्रित हुआ। फर्ग्युसन के इस प्रयास ने ही तत्कालीन भारतीय कला धारा को नया मोड दिया व इसी भारतीय कला पुनर्जागरण को सर्वत्र स्वीकारा गया।

भारतीय चित्रकला में 19वीं शताब्दी कला के नवीन मूल्यों व नव प्रयोगों का युग रहा है जिससे चित्रकारों में कुछ नया कार्य करने व कला में नये स्वरूपों व नवीन आकारों की कला निर्मिति के अनेक आधार स्थापित किये गये हैं व विभिन्न प्रदेशों में कला के नये परिवर्तन दिखायी देने लगे, पर राष्ट्रीय स्तर पर चित्रकार एक साथ जुड़कर कला के क्षेत्र में एक नया आन्दोलन लाने का प्रयास बीसवीं सदी में ही कर पाये।

सांस्कृतिक तथा कलात्मक विकास की दृष्टि से प्रदेशों के अतिरिक्त केन्द्र में ललित कला अकादमियों की स्थापना हुई। 1994 में आधुनिक कला की राष्ट्रीय वीथी की स्थापना हुई। वार्षिक कला प्रदर्शनियों, कला संस्थाओं की प्रदर्शनियों एवं अन्तरराष्ट्रीय प्रदर्शनियों का आयोजन किया जाता रहा है और श्रेष्ठ कलाकृतियों को पुरस्कृत किया जाने लगा।

इस प्रकार राजकीय अनुग्रह, कुछ निश्चित विचारधारा अथवा प्रभाव से सम्बन्धित चित्रकारों के ही चित्र पुरस्कृत अथवा क्रय किये जाने और यहाँ तक कि वार्षिक राष्ट्रीय प्रदर्शनियों के हेतु चित्रों के चयन किये जाने की पद्धतियों के प्रति कलाकारों में रोष भी उमड़ा है और उन्होंने खुलकर विरोध भी प्रकट किया है। स्वामीनाथन आदि का 1970 में आरम्भ किया गया 'आर्टिस्ट्स प्रोटेस्ट मूवमेण्ट' इसी प्रकार का एक आन्दोलन था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् यद्यपि कला अकादमियों तथा संग्रहालयों ने चित्र क्रय करना आरम्भ कर दिया है किन्तु कलाकार विदेशों में चित्र-विक्रय से जो धन अर्जित कर रहे हैं उनकी तुलना में भारत में प्राप्त होने वाला धन नगण्य है। यह एक विडम्बना ही है कि भारतीय कला के विदेशी ग्राहकों द्वारा ही भारतीय कलाकारों द्वारा की जा रही पश्चिम की अनुकृति पसन्द नहीं की गयी और उनके द्वारा कुछ ऐसी वस्तु जो भारतीय हो और जो उनके देशों की कला में न मिलती हो, को खरीदने की इच्छा भी आधुनिक भारतीय चित्रकला में पश्चिम के अन्धाधुन्ध अनुकरण को रोकने का एक प्रबल कारण बनी। समकालीन भारतीय कला में भारत की लोक कला अथवा परम्परागत शैलियों आदि का जो प्रयोग किया जा रहा है, उसके संयोजनों तथा आधुनिकीकरण के पीछे भारतीयता की दृष्टि कार्य कर रही है।

भारतीय परम्परागत चित्रकला की अंतरराष्ट्रीय व्यापकता और गुणवत्ता पर पिछली डेढ़ शताब्दी से जो कुछ प्रयास कतिपय लेखकों द्वारा हुए उन्हें प्रायः नजरन्दाज किया जाता रहा है। 1896 ई. में योरोपीय कला - समीक्षक ई.वी. हेवेल ने यह स्पष्ट किया था कि ''भारतीय कला-पद्धति मानव मन की सर्वोच्च स्पष्ट अभिव्यक्ति है जबकि योरोपीय कला सांसारिक वस्तुओं तक ही सीमित है।'' यही से भारतीय चित्रकला के पुनर्मूल्यांकन का सूत्रपात होता है पर इसकी पूर्व पृष्ठभूमि में विश्व के जाने-माने दार्शनिकों और समीक्षकों की यह मान्यता रही है कि भारत, कला संस्कृति तथा दर्शन के क्षेत्र में पश्चिमी देशों के लिए मूल प्रेरणास्त्रोत रहा है। यही नहीं, सांस्कृतिक समन्वय के तहत भारतीय संस्कृति दर्शन तथा कला में पूर्वी देश, पश्चिमी देशों में सदैव आगे रहे हैं तथा उनका गुणात्मक पक्ष किसी कदर कम नहीं रहा है।

जर्मनी के समीक्षक वोल्फ गेंगवोन गेटे (1749-1832 ई.) स्वयं तत्कालीन पौर्वात्य कला और संस्कृति के पारखी रहे हैं। उन्होंने कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् नाटक की शैली को स्पष्ट करते हुए भारतीय कला में गुणात्मक नाटक की शैली को स्पष्ट करते हुए भारतीय कला में गुणात्मक पक्ष को शीर्ष स्थान पर रखने की पुष्टि की। इसी क्रम में अन्य जर्मन दार्शनिक फ्रेडरिक बोन स्लीगन (1772-1829ई.) ने भारतीय कला और दर्शन को यूनान की अपेक्षा कहीं अधिक ऊँचे स्थान पर रखा है। यह क्रम यही नहीं रूकता है, इनमें जर्मन दर्शनिक एवं कला समीक्षक शोपेनऑवर (1788-1829 ई.) ने बड़ी ईमानदारी से अपने हृदय को खोलकर जो उद्‌गार व्यक्त किये हैं उनसे भारतीय कला के आदर्श स्वतः अपनी ऊँचाइयों को छूते हैं। उन्होंने लिखा है कि ''मैं बड़े विनम्र तथा कृतज्ञ भाव से यह कहे बिना नहीं रह सकता कि सम्पूर्ण विश्व में ऐसा कोई ग्रंथ अध्ययन करने को नहीं मिला और न मुझे इतना बौद्धिक स्तर पर लाभान्वित करने वाला उर्धोन्मुखी साहित्य ही मिला जितना कि मैंने उच्च कोटि के भारतीय साहित्य 'उपनिषद' से प्राप्त किया है।''

शोपेनऑवर की यह प्रशंसायुक्त अभिव्यक्ति स्पष्ट करती है कि भारतीय दार्शनिक तथा कलाकार, पश्चिमी देशों को सदैव प्रभावित करते रहे है। उल्लेखनीय है कि कवि, साहित्यकार एवं कला-समीक्षक गेंगवोन गेटे प्राचीन भारतीय कला के मानक मूल्यों से प्रभावित रहे जो 'ध्वनि' तथा 'रंगों' के प्रतीकात्मक पक्षों से जुड़े हुए थे। इस प्रकार रोमेन्टिसिस्ट कल्पित कथाकारों की रंग संगति से अद्‌भुत मिश्रण के विचार भी प्राप्त होते हैं। जर्मन लेखक वर्नर हेफ्टंग ने कहा कि ''समस्त जर्मनकला एवं संस्कृति की समृद्धि तथा ख्याति में भारतीय कला के मूल स्त्रोतों का ही योगदान है।'' कई बुद्धिजीवी एवं 'इण्डोलोजिस्ट' भारतीय स्त्रोतों की प्रशंसा करते हुए यह स्वीकार करते हैं कि पश्चिमी देशों की कला में आज जो लोकप्रियता दिखाई देती है वह मूल रूप से भारतीय कला की परिणति है। यही नहीं, पूर्वी देशों की कला में जो चैत्रिक विशेषताएँ सदियों से रही उनकी तुलना में पश्चिमी देशों के कलाकार भारतीय चित्रण पद्धतियों का अनुकरण करते हुए भी उसके कलात्मक पक्ष को पूर्ण रूप से ग्रहण नहीं कर पाये, न वे उस गुणात्मक पक्ष को ही ला पाये जो यहाँ की कला में सदियों से विद्यमान रहा है। विदेशी चित्रकारों ने पूर्वी देशों की चित्रकला का प्रभाव पाया और उसके गुणात्मक पक्ष पर जो चर्चाएँ रही वे अब सर्वत्र धीरे-धीरे उजागर हो रही है। ❑